आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-१९ * अंक-११ * जुलाई-२०२५

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

● जो गुणकर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुए औदयिक हैं, कर्मोंके उपशमजन्य औपशमिक हैं तथा कर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए क्षायोपशमिक हैं और जो विविध शास्त्रसमूह द्वारा वर्णन किये गये हैं—अनेक शास्त्रोंमें जिनका वर्णन है—वे सब चेतनारहित अचेतन हैं।१०४। (श्री अमितगति आचार्य, योगसार, अधि-१, श्लोक-४९)

● निश्चयनयका स्वरूप ऐसा है कि, एकद्रव्यकी अवस्था जैसी हो उसीको कहे। आत्माकी दो अवस्थायें हैं—एक तो अज्ञानावस्था और एक ज्ञानावस्था। जब तक अज्ञानावस्था रहती है तब तक तो बंधपर्यायको आत्मा जानता है—कि मैं मनुष्य हूँ, मैं पशु हूँ, मैं क्रोधी हूँ, मैं मानी हूँ, मैं मायावी हूँ, मैं पुण्यवान-धनवान हूँ, मैं निर्धन, दरिद्री हूँ, मैं राजा हूँ, मैं रंक हूँ, मैं मुनि हूँ, मैं श्रावक हूँ इत्यादि पर्यायोंमें स्वयं मानता है, इन पर्यायोंमें लीन होता है, तब ये मिथ्यादृष्टि है, अज्ञानी है, इसका फल संसारमें उसको भोगना पड़ता है।१०५। (श्री कुन्दकुन्द आचार्य, मोक्षपाहुड-८३)

● प्रकटरूपसे सदाशिवमय (निरंतर कल्याणमय) ऐसे परमात्मतत्त्वमें ध्यानावली होना ही शुद्धनय नहीं कहलाता। ''वह है'' (अर्थात् ध्यानावली आत्मामें है)' ऐसा (मात्र) व्यवहारमार्गमें सतत् कहा है। हे जिनेन्द्र! ऐसा वह तत्त्व तूने नय द्वारा कहा हुआ वस्तु स्वरूप, अहो! महा इन्द्रजाल है।१०६। (श्री पद्मप्रभमलधारीदेव, नियमसार श्लोक-११९)

● जिस प्रकार जपापुष्पके योगसे स्फटिकमणिमें जो लालिमाका प्रतिभास होता है वह क्षणिक है परन्तु स्फटिकमणिका स्वरूप नहीं, उसी प्रकार जीवादि नवतत्त्वोंमें जो जीवका प्रतिभास होता है वह वास्तविक नहीं परन्तु केवल व्यवहारदृष्टिसे है—शुद्धदृष्टिसे नहीं। शुद्धदृष्टिसे तो जीवतत्त्व अद्वैतरूप ही है, उसमें यह नौ अवस्थाओंका प्रतिभास प्रतीत होता नहीं।१०७। (श्री राजमल्लजी, पंचाध्यायी-२, गाथा-१२९)

● जो नय आत्माको बंधरहित और परके स्पर्शरहित, अन्यपनारहित, चलाचलतारहित, विशेषरहित, अन्यके संयोगसे रहित हो ऐसे पाँच भावरूपमें देखता है उसे हे शिष्य! तू शुद्धनय जान।१०८। (श्री कुन्दकुन्दाचार्य, समयसार गाथा-१४)

● जीवके कषायादिक जितना परिणाम है वह सब चेतनाको निमित्तभूत करके कर्म द्वारा उत्पन्न करनेमें आता है, जैसे कुम्हारका निमित्त पाकर मिट्टीके पिंड द्वारा घटादिक उत्पन्न करनेमें आता है।१०९। (श्री अमितगति आचार्य, योगसार, चूलिका अधि, श्लोक-३९)

वर्ष-19
अंक-11

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत
2081
July
A.D. 2025

परमागम श्री प्रवचनसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन

(गाथा ६८ के प्रवचनमेंसे)

आत्मा स्वयं ही सुखरूप है

जैसे आकाशमें सूर्य स्वयमेव तेज, ऊष्ण और देव है वैसे लोकमें सिद्ध भगवान स्वयमेव ज्ञान, सुख और देव है। जैसे सिद्ध ज्ञान, सुख और देव है। वैसे सभी आत्माएँ सिद्ध समान शक्तिसे ज्ञान, सुख, देव स्वरूप है। ऐसा बतलाया है।

सूर्य अनादिनिधन पदार्थ है। आकाशमें किसी कारणकी अपेक्षा बिना प्रकाशमान हो रहा है। पूर्वसे पश्चिम जाता है उसमें उसे किसीके सहारेकी आवश्यकता नहीं है।

(१) सूर्य स्वयंके विपुल प्रकाशमय स्वरूपसे प्रकाशित होनेसे तेजरूप है।

(२) लोहेका गोला किसी समय उष्ण होता है वैसे सूर्य सदा उष्णता परिणामको प्राप्त होनेसे उष्ण है। (सूर्यका विमान वह एकेन्द्रिय पृथ्वीकाय जीव है उसे आताप नामकर्मका उदय है इसलिये उष्णरूप जाननेमें आता है।)

(३) देवगति नामकर्मकी धारावाही उदयके कारण वह देव है। यहाँ देवगति नामकर्मका उदय जो कहा है वह उसमें रहनेवाले देवोंको होता है लेकिन उसका उपचार विमान पर किया है।

श्री कुंथुनाथ जिन-स्तुति

द्वय ध्यान अशुभ नहिं नाथ करे,
उत्तम द्वय ध्यान महान धरे ।८३।

श्री स्वयंभू–स्तोत्र

उसी प्रकार यह आत्मा स्वयमेव है। स्वयमेव शब्द स्वतंत्रता दर्शाता है। आत्मा किसीका बनाया हुआ नहीं और किसीसे नाश होकर अन्यमें मिल जाय ऐसा नहीं है।

(१) सिद्ध भगवानको स्वपरप्रकाशक शक्ति प्रकट हो गई है। वह शक्तिवाला सहज संवेदन साथ एकमेक है। विकारका नाश हो गया है इसलिये शुद्धपर्यायोंके साथ ज्ञान एकमेक है। यह आत्माका स्वरूप पुण्य-पापके साथ एकमेक नहीं है।

(२) ज्ञानस्वभावकी एकाग्रतासे उत्पन्न होनेवाला परिपूर्ण सुख सिद्ध भगवंतोंको होता है और आकुलता नहीं होनेके कारण विशेष स्थित है, और सुखी है वैसे आत्मा भी सिद्ध समान है। व्यवहार दया, दान, पूजाके भाव वह आत्मतृप्तिका कारण नहीं है। लेकिन आत्मा स्वयं सुखस्वभाव है उसकी प्रतीति, ज्ञान और वेदन वह सुख है इस प्रकार जो मानता है उसे सम्यक्ज्ञान होता है। ज्ञानमें संतोष और शांति हुई है। परम शांतरसकी तृप्तिसे आत्मा आगे वृद्धिगत होकर सिद्ध होता है। इसलिये यह आत्मा ही सुख स्वरूप है।

(३) जो सर्वज्ञदशाके नजदीक है ऐसे गणधरों एवं ज्ञानी पुरुषोंके मनरूप स्तंभमें सिद्ध भगवंतकी दिव्यता उत्कीर्ण है। ऐसे महापुरुषों सिद्ध भगवंतोंकी स्तुति करते हैं। इसलिये सिद्ध भगवान देव है। इसी प्रकार यह आत्मा भी स्वयंके स्वरूपकी दिव्यताकी महिमा गा रहा है। इसलिये यह आत्मा भी देवस्वरूप है। अज्ञानीको स्वयंके स्वरूपकी खबर नहीं है इसलिये वह रागकी महिमा गा रहा है। ज्ञानीको विकल्प हो तब सिद्धकी महिमा गा रहा है ऐसा कहा जाता है। वास्तवमें वह स्वयं आत्मदेवकी महिमा गा रहा है। इसलिये यह आत्मा स्वयं ही ज्ञान है, स्वयं ही सुखरूप है, और स्वयं ही देव है।

इसलिये आचार्य भगवान कहते है कि सुखके साधनकी जो अज्ञानी कल्पना करता है वह बाह्य पदार्थों, शरीर, इन्द्रियाँ, लक्ष्मी, कुटुम्ब, पुण्य, पाप आदि सुखके साधन नहीं है। उससे विमुख होओ, ठहर जाओ और परिपूर्ण केवलदशाको प्राप्त किजीये। सिद्ध वह आदर्श दर्पण है। सिद्धको जो है वह मुझे भी है, सिद्ध भगवानको पुण्य-पाप और व्यवहार निकल गये है। तो आत्मामें भी पुण्य-पाप और व्यवहार बाहर निकलनेके पात्र है। सिद्ध तो अनंत ज्ञान, दर्शन सहित है और रागादि रहित है। ऐसा निर्णय सिद्धदशा प्रकट न होने पर भी ज्ञानचक्षुसे देखकर यह आत्मा निर्णय करे तो स्वयं सुखी होकर सिद्धदशाको प्राप्त करता है।

निज घाती कर्म विनाश किये,
रत्नत्रय तेज स्ववीर्य लिये;

इस गाथामें शुभोपयोगका स्वरूप दर्शाते है।

यह आत्मा जब दुःखके साधनरूप प्रतिकूलताकी ओरके द्वेषको छोड़ता है और अनुकूल सामग्री व पाँच इन्द्रियके विषयोंकी ओरके अनुरागको छोड़ता है, अर्थात् कि संसारके अशुभभावको छोड़ता है, तब देव, गुरु, यति आदिके पूजाके शुभभाव करता है।

ऐसा जीव सात्त्विक वृत्तिवाला होता है। अठारह दोष रहित वीतराग सर्वज्ञदेवको मानता है, पूजन करता है। सम्यग्दर्शन सहित निर्ग्रंथ दिगम्बर गुरु एवं मुनिकी पूजा करता है। चार प्रकारके दान योग्य मुनिको देता है। स्वयं शीलव्रत और कोमलताको धारण करता है और उपवासादिक तप करता है। वह धर्मानुराग होनेसे शुभोपयोग है। पुण्य है, लेकिन धर्म नहीं है।

अज्ञानी जीवको इस शुभभाव में लीनता होती है। इसलिये उसे आरूढ कहा है। शुभभाव वह धर्मका घात करनेवाला है। उससे पारमार्थिक सुख मिलता नहीं है, लेकिन इन्द्रियसुख मिलता है, अर्थात् राजा अथवा स्वर्गादिकी प्राप्ति होती है किन्तु धर्म या मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती है। यहाँ तो देव-गुरुका यथार्थ स्वरूप जानकर शुभोपयोगमें लीनतावाले मिथ्यादृष्टिके शुभभाव आत्माके घातक है और संसारमें परिभ्रमण कराते हैं उसकी बात कही जा रही है। कुदेव तथा कुगुरुको माने तो उसके पुण्यका मूल्य नहीं है।

देवका स्वरूप :–सर्वज्ञदेव, क्षुधा, तृषा, विस्मय आदि अठारह दोषोंसे रहित वीतराग परमात्मा जो एक समयमें तीन काल, तीन लोकको जानता है वह ही देव पूजन योग्य है।

गुरुका स्वरूप :–स्वयंके अखंड आत्माकी अखंड प्रतीति, यथार्थ ज्ञान और लीनता तथा आचरण वह निश्चय रत्नत्रय है और सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा, ज्ञान और शुभभाव वह व्यवहार रत्नत्रय है। गुरु ऐसे भेद और अभेद रत्नत्रयके आराधक है। और अन्य आराधक जीवोंको जिनदीक्षा देते है। सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित अंतरदशामें वृद्धि हुई उसे दीक्षा देते है तब बाह्य नग्न दिगम्बर दशा होती है। यहाँ व्यवहारके आराधक कहे है। उसका अर्थ इतना कि निश्चयके साथ व्यवहार वर्तता है और उस व्यवहारका निषेध वर्तता है इसलिये उसे व्यवहारके आराधक कहा है। लेकिन व्यवहार रत्नत्रयके आश्रयसे धर्म होता नहीं ऐसा वह जानते है।

(शेष देखे पृष्ठ ८ पर)

सब आगमके वक्ता राजैं,
निर्मल नभ जिम सूरज छाजैं।८४।

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-४१ (गाथा-३६-३७)

सुलभ प्राप्त विषयोंमें भी धर्मीको निर्ममत्व

योगी कैसे स्थानमें ध्यान करते हैं ? कि एकांतस्थानमें। जैसे किसीको पाँच-पचीस लाखका निधान मिला हो तो वह किसीको बताता नहीं लेकिन एकांतस्थानमें उसे भोगता है वैसे सम्यग्दृष्टि योगी एकांतस्थानमें आत्मनिधानका भोग करता है। बाह्य कोलाहलकी प्रतिकूलता रहित और अंतरमें रागके कोलाहल रहित एकांतस्थानमें सम्यग्दृष्टि ध्यान करता है। पर्वतोंकी गुफा आदि एकांतस्थानमें आलस्य और निद्रारहित होकर योगी स्वयंको प्रिय ऐसे आत्मामें लीन होता है।

धर्म तो उसे कहते है कि जिसमें अतीन्द्रिय आनंदका अनुभव हो, धर्म रूखा नहीं होता है, शुभ विकल्प वह कोई धर्म नहीं है, उसमें आनंद नहीं है, दुःख है।

तीन लोकके नाथ सर्वज्ञ भगवान कहते है कि भाई ! तेरे निधानमें अतीन्द्रिय आनंद, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शांति, अतीन्द्रिय वीर्य, प्रभुता आदि अनंत गुणरत्नोंके निधान भरे है उसको रुचिमें ले और उसमें एकाग्र होकर उसका भोग कर ! अतीन्द्रिय आनंदमें तृप्त हो जा !

लग्नमें गोर कहते हैं ने 'समय रहते सावधान' वैसा यहाँ समय अर्थात् आत्मामें सावधान होकर वर्त तो उसे अतीन्द्रिय महा-आनंदका लाभ प्राप्त हो। ऐसा भगवान कहते है।

यह तो सभीको समझमें आये ऐसी बात है। ऐसा मत समझना कि मैं बालक हूँ, मैं वृद्ध हूँ इसलिये समझमें न आये। बालक या वृद्ध आत्मा नहीं है। आत्मा तो त्रिकाल समझनेवाला तत्त्व है। वह अभी न समझे तो ऐसा मनुष्यभव समझनेका अवसर पुनः कहाँसे मिलेगा ? इस उत्तम भवमें सत्य बात समझमें न आयी, दृष्टिमें न आई तो किस कामका ? पाँच-पचीस लाख रुपये मिले तो वह पूर्वके पुण्यके कारण आये और पुण्य समाप्त हो गया, उसमें तुझे क्या मिला भाई ! तूने कमानेका भाव करके पापबंध किया। कदाचित् दया-दान-भक्ति करके पुण्यबंध किया तदपि उसमें धर्म कहाँसे आया ? पुण्य-पापके विकल्पसे

यतिपति ! तुम केवलज्ञान धरे,
ब्रह्मादि अंश नहि प्राप्त करे;

पार निज शुद्ध चैतन्यका अनुभव करना वह तेरा धर्म है—संवित्ति है।

अब शिष्यको प्रश्न होता है कि जिसे देह, वाणी, मन और रागादिकी रुचि छूटकर अपने चैतन्य स्वभावका रुचिपूर्वक अनुभव होता है ऐसे योगीको मालूम कैसे हो कि मुझे अनुभव हो गया है? शांति प्रकट हो चुकी है? और प्रतिक्षण उसके अनुभवमें उन्नति हो रही है तो भी उसे मालूम कैसे हो? शुद्धात्माका अनुभव हुआ है और उसमें वृद्धि हो रही है उसको जाननेके लिये लक्षण क्या है? मुझे परभावका वेदन छूट गया है और आत्मसंवित्तिका वेदन हुआ है यह जाननेका लक्षण क्या है?

शिष्यका प्रश्न सुनकर आचार्य कहते है कि हे बुद्धिमान ! तेरा प्रश्न उचित है, सुन ! मैं तुझे वह पहिचाननेका लक्षण कहता हूँ। जैसे व्यापारमें धन मिले और उसमें वृद्धि होती है तो मालूम होता है न? उसी प्रकार यह धर्म व्यापारमें भी आनंदका अनुभव होता है और वृद्धि होती है तो उसके लक्षण परसे जाननेमें आ जाता है।

यथा यथा समायाति संवित्तो तत्त्वमुत्तमम्।
तथा तथा न रोचन्ते विषयाः सुलभा अपि॥३७॥

ज्यम ज्यम संवेदन विषे आवे उत्तम तत्त्व,
सुलभ मळे विषयो छतां, जरीये करे न ममत्व. ३७.

यह वीतराग सर्वज्ञ परमात्माने कही हुई धर्मकी पद्धति है। अनादिसे जीव जब तक मिथ्यादृष्टि था तब तक वह पुण्य-पाप, दया-दान आदि रागका अनुभव करता था लेकिन जब वह जीव निज उत्तम शुद्ध आनंदकंदका अनुभव करने लगता है तो जैसे जैसे अनुभव वृद्धिगत होता जाता है वैसे वैसे योगीको सहजतासे प्राप्त होनेवाले विषय भी रुचते नहीं है।

योगी किसे कहते है? कि जो परमात्माने बतलाये निज शुद्धात्मामें एकाकार होता है वह 'योगी' है। शेष सभी भोगी है। बहुतसे अज्ञानी बाह्यमें योगी जैसे दिखते है लेकिन अंतरसे भोगी होते है और सम्यग्दृष्टि बाह्यसे भोगी दिखते हो तदपि अंतरमें आत्मामें एकाकार होते है इसलिये वह योगी है।

योगीको अपने अतीन्द्रिय आनंदके आगे भोगकी इच्छा रोग समान लगती है। उसको अन्यायसे प्राप्त वस्तु या माया-कपटसे या बलात्कारसे लाई हुई स्त्री आदिका भोग तो होता

निज हित रत आर्य सुधी तुमको,
अज ज्ञानी अर्ह नमें तुमको।८५।

ही नहीं लेकिन पूर्व पुण्यसे सहजतासे प्राप्त स्त्री, पुत्र, धन आदिका भोग भी रोग समान लगता है। अतीन्द्रिय आनंदके भोगके सामने अन्य कुछ भी रुचता नहीं है। जैसे रोगी रोगकी इच्छा करता नहीं, दवाकी भी इच्छा करता नहीं वैसे धर्मीको पाँच इन्द्रियके विषयोंके भोगका राग आता है उसे रोग मानता है और उस रोगके इलाजरूप क्रियाको-भोगको भी वह हेय मानता है, इच्छा करता नहीं है।

जिसने दूधपाकका स्वाद चखा है उसे लाल ज्वारके छिलकेकी रोटी अच्छी लगती नहीं है। वैसे धर्मी चक्रवर्ती हो फिर भी अतीन्द्रिय आनंदका अनुभव किया है इसलिये उसे छह खंडकी विभूतिका भोग रुचिकर होता नहीं है।

प्रवचनसारमें दृष्टांत आता है कि मछलीको जमीन पर आना भी दुःखरूप लगता है तो अग्निमें जाना कितना दुःखरूप लगेगा ? वैसे जिसे मैं आनंदमूर्ति हूँ ऐसा भान और वेदन है ऐसे धर्मीको शुभभावमें आना दुःखरूप लगता है और विषय वासनामें आना तो अग्निके अंगारेमें जाने जितना दुःखरूप लगता है। यह धर्मीका लक्षण है। बाह्यसे स्त्री-पुत्रादिको छोड़कर जंगलमें रहे वह धर्मी ऐसे धर्मीका लक्षण नहीं है। स्वभावके अनुभवके सामने जिन्हें परभावका अनुभव दुःखरूप लगता है, शुष्क लगता है, वह धर्मीका लक्षण है। उसके परसे धर्मीकी पहिचान होती है। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ ५ का शेष भाग) (प्रवचनसार प्रवचन)

मुनिका स्वरूप :–पाँच इन्द्रिय वह आत्माका स्वरूप नहीं है, शरीरकी क्रिया आत्माकी नहीं है, पुण्य-पाप आत्माका स्वरूप नहीं है। वे इन्द्रियातीत स्वरूप वह शुद्ध चिदानंदका स्वरूप है ऐसे सत् स्वरूप आत्माका पुरुषार्थ करते है वह मुनि है।

जो जीव ऐसे देव-गुरु-मुनिकी तथा उनकी प्रतिमाकी पूजा करता है, आहारादि चार प्रकारके दान देता है। शास्त्र अनुसार व्रतादिका पालन करता है, उपवास आदिमें प्रीति करता है, उसे धर्मानुराग होनेसे शुभोपयोग होता है। वह पुण्यका कारण है। धर्मका कारण नहीं है। ऐसे शुभोपयोगसे स्वर्गादिकी प्राप्ति होती है अर्थात् इन्द्रिय सुख मिलता है। क्योंकि जिस जीवको पुण्य, शुभभाव व्यवहारकी ही रुचि है और व्यवहारको अपना कर्तव्य मानता है ऐसे रुचिवाले जीवको पारमार्थिक सुख मिलता नहीं है। (क्रमशः) ✻

श्री अरनाथ जिन-स्तुति	गुण थोडे बहुत कहे बढाय, जगमें थुति सो ही नाम पाय;

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

ज्ञानमें प्रत्यक्ष व परोक्षके प्रकारका वर्णन

''अब प्रमाण सम्यग्ज्ञान है; इसमें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तो परोक्ष प्रमाण है, अवधि मनःपर्याय व केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'आद्ये परोक्षम्; प्रत्यक्षमन्यत्' ऐसा सूत्र कहा हैं। तथा तर्क शास्त्रमें प्रत्यक्ष-परोक्षका ऐसा लक्षण कहा है–'स्पष्टप्रतिभासात्मकं प्रत्यक्षम्, अस्पष्टं परोक्षम्' अर्थात् जो ज्ञान अपने विषयको अच्छी तरह निर्मलतारूप जाने वह ज्ञान प्रत्यक्ष है, और जो ज्ञान स्पष्ट–अच्छी तरह न जाने वह परोक्ष है। मतिज्ञान श्रुतज्ञानके विषय तो बहुत हैं परन्तु वे एक ही ज्ञेयको सम्पूर्ण नहीं जान सकते इसलिये वे परोक्ष हैं; और अवधि-मनःपर्ययज्ञानका विषय तो थोड़ा है परन्तु वे अपने विषयको स्पष्ट–अच्छी तरह जानते हैं इसलिये वे एकदेशप्रत्यक्ष हैं; और केवलज्ञान सर्व ज्ञेयोंको आप स्पष्ट जानता है इसलिये वह सर्वप्रत्यक्ष है।''

आगमकी शैलीको लेकर प्रत्यक्ष-परोक्षके यह प्रकार कहे हैं, इनमें मतिश्रुतको परोक्ष कहे हैं; फिर भी अध्यात्मशैलिमें वे स्वानुभव प्रत्यक्ष भी कहे हैं;–यह बात श्रीमान पंडितजी स्वयं ही इस पत्रमें आगे लिखेंगे।

प्रत्येक आत्मा ज्ञानस्वरूप है; उसका ज्ञान कैसा कार्य करे तो उसे धर्म हो ? इसकी यह बात है; अथवा क्या करनेसे सम्यग्दर्शन प्रकट हो इसकी यह बात है। सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्ची प्रतीति; शुद्धात्मा जैसा है वैसी उसकी प्रतीति वह सम्यग्दर्शन है। अब, शुद्धात्मा कैसा है इसको जब ज्ञान यथार्थतः जाने तब उसके सच्चे ज्ञानपूर्वक सच्ची प्रतीति होती है। किन्तु ज्ञानमें ही जिसके विपरीतता हो उसको सच्ची प्रतीति कहाँसे होगी ? जिसको जाना हो उसकी ही प्रतीति कर सकते हैं। आत्माको जाननेका काम छद्मस्थको मति-श्रुतज्ञान द्वारा होता है। परन्तु जो मतिश्रुतज्ञान अकेले परोन्मुख ही बना रहे वह आत्माको नहीं जान सकता। परसे परान्मुख हो, इन्द्रिय-मनके अवलम्बनसे हटकर, स्वोन्मुख होने तब ही वह मतिश्रुतज्ञान आत्माको सम्यक्रूपसे अनुभवता है और ऐसे ज्ञानपूर्वक ही आत्माकी सम्यक् प्रतीति होती है। पूर्व अनंतकालमें जीवने ऐसी सम्यक् प्रतीति कभी नहीं की। ऐसी सम्यक् प्रतीति करना

तेरे अनन्त गुण किम कहाय,
स्तुति तेरी कोइ विधि न थाय।८६।

वह अपूर्व कार्य है, इसके द्वारा मोक्षमार्गका प्रारम्भ होता है। यह सम्यग्दर्शन कहीं परमेंसे या रागके विकल्पमेंसे आ जाय–ऐसा नहीं, स्वसन्मुख दृष्टि करनेसे ही सम्यग्दर्शन होता है।

सम्यग्दर्शन सहितका जो सम्यग्ज्ञान है वह प्रमाण है, और उसमें प्रत्यक्ष-परोक्षपनेका यह वर्णन चल रहा है। अवधिज्ञान व मनःपर्ययज्ञान सभी साधकोंको तो नहीं होते; बहुतसे जीव अवधि और मनःपर्ययज्ञानके बिना भी, सम्यक् मतिश्रुतज्ञानसे ही आत्माका अनुभव करके सीधे केवलज्ञान पा लेते हैं। कोई कोई धर्मी जीवको अवधिज्ञान या मनःपर्ययज्ञान प्रकट होता है। उनमें मनःपर्ययज्ञान तो किसी किसी मुनिको ही होता है। ये अवधि और मनःपर्ययज्ञान यद्यपि प्रत्यक्ष है, परन्तु वे ज्ञान परको–रूपीको ही प्रत्यक्ष जान सकते हैं, अरूपी आत्माको वे प्रत्यक्ष नहीं कर सकते। मति-श्रुतज्ञान स्वसन्मुख हो करके आत्माको साधते हैं, परन्तु उस ज्ञानमें केवलज्ञानकी तरह आत्मप्रदेश साक्षात् प्रत्यक्ष जाननेमें नहीं आते, इसलिये उसको परोक्ष कहा है। परको भी वह, अवधि मनःपर्ययज्ञान जितना स्पष्ट नहीं जानता, अस्पष्ट जानता है, इसलिये वह परोक्ष है। केवलज्ञानकी तो बात ही क्या? वह तो सर्व प्रकारसे साक्षात् प्रत्यक्ष है, सम्पूर्ण प्रत्यक्ष है; आत्माके हरेक प्रदेशको भी वह साक्षात् जानता है। ऐसे केवलज्ञानसहित सीमंधर परमात्मा अभी विदेहक्षेत्रमें तीर्थंकरपदमें विराजमान हैं।

ज्ञानमें प्रत्यक्ष-परोक्षपनेका विशेष वर्णन
मति-श्रुतज्ञानकी ताकत

''और प्रत्यक्षके दो भेद हैं–परमार्थप्रत्यक्ष तथा व्यवहारप्रत्यक्ष। अवधि, मनःपर्यय व केवलज्ञान तो स्पष्ट प्रतिभासरूप हैं ही इसलिये वे पारमार्थिक प्रत्यक्ष हैं। तथा जहाँ नेत्रादिकसे वर्णादिकको जानते हैं वहाँ व्यवहारसे ऐसा कहते हैं कि इसने वर्णादिक प्रत्यक्ष जाने; एकदेश स्पष्टता भी पाई जाती है, इसलिये इनको सांव्यवहारिक-प्रत्यक्ष कहते हैं; परन्तु एक वस्तुमें जो अनेक वर्ण मिश्र हैं वे नेत्रद्वारा अच्छी तरहसे जाने नहीं जाते इसलिये इनको परमार्थ प्रत्यक्ष नहीं कहते हैं।

परोक्ष प्रमाणके पाँच भेद हैं, १–स्मृति, २–प्रत्यभिज्ञान, ३–तर्क, ४–अनुमान व ५–आगम। इनमें–

१. पूर्वकालमें जानी हुई वस्तुको याद करके जानना वह स्मृति है।

तो भी मुनीन्द्र शुचि कीर्ति धार,
तेरा पवित्र शुभ नाम सार;

२. दृष्टान्तके द्वारा वस्तुका निश्चय करना वह प्रत्यभिज्ञान है।

३. हेतुसे जो विचारमें लिया उस ज्ञानको तर्क कहते हैं।

४. हेतुसे साध्यवस्तुका जो ज्ञान वह अनुमान है।

५. आगमसे जो ज्ञान हो उसे आगम कहते हैं।

ऐसे प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रमाणके भेद कहे हैं।''

अवधि, मनःपर्यय व केवलज्ञान ये तीनों परमार्थ प्रत्यक्ष हैं; इनमें केवलज्ञान तो महा प्रत्यक्ष, परम अतीन्द्रिय, सम्पूर्ण प्रत्यक्ष दिव्यज्ञान है; अवधि-मनःपर्ययज्ञानमें इन्द्रियादिका अवलम्बन नहीं है, परन्तु वे ज्ञान अमुक विषयोंको जानते हैं अतएव वे दोनों एकदेश प्रत्यक्ष हैं। ये तीनों ज्ञान परमार्थ प्रत्यक्ष हैं। और मति-श्रुतज्ञान यद्यपि परोक्ष हैं तथापि, 'व्यवहारमें मैंने यह वस्तु साक्षात् देखी, मैंने अमुक मनुष्यको साक्षात् देखा' इत्यादि प्रकार कहनेमें आता है अतः इस ज्ञानको 'सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी कहनेमें आता है। यहाँ प्रथम तो सामान्यरूपसे पाँच ज्ञानोंमेंसे प्रत्यक्ष-परोक्ष कौन-कौन है यह दर्शाते हैं; इनमें मति-श्रुतकी जो खास विशेषता है वह बादमें बतलायेंगे।

* केवलज्ञान तो एक ही प्रकारका है।

* मनःपर्ययज्ञान ऋजुमति व विपुलमति ऐसे दो प्रकारका है; इनमें विपुलमति तो अप्रतिपाती है अर्थात् इस ज्ञानके धारक मुनिराज नियमसे इसी भवमें मोक्ष पाते हैं।

* अवधिज्ञान देशअवधि परमअवधि व सर्वअवधि ऐसे तीन प्रकारका है; इनमें परमअवधि व सर्वअवधि ये दो प्रकार चरमशरीरी (तद्भव मोक्षगामी) मुनिराजके ही होते हैं।

* मति-श्रुतज्ञान परोक्ष हैं; इन परोक्षज्ञानके अनेक भेद हैं। यहाँ अन्य प्रकारसे इनके पाँच भेद कहे हैं–स्मृति, प्रत्यभि, तर्क, अनुमान व आगम। इनमें पहलेके चार भेद मतिज्ञानके हैं, और आगम यह श्रुतज्ञान है।

स्मृति अर्थात् पूर्वमें देखी हुई वस्तुको स्मरणपूर्वक वर्तमानमें जानना; जैसे-सीमंधर भगवान ऐसे थे...उनकी वाणी ऐसी थी....समवसरण ऐसा था.... इत्यादि पूर्वमें देखी हुई वस्तुको वर्तमानमें याद करके जाने ऐसी मतिज्ञानका ताकत है।

प्रत्यभिज्ञान अर्थात् पूर्वमें देखी हुई वस्तुके वर्तमान वस्तुका मिलान करना; जैसे–

कीर्तनसे मन हम शुद्ध होय,
तातैं कहना कुछ शक्ति जोय।८७।ल

पूर्वमें जिन सीमंधर भगवानको देखा था उनके जैसी ही इस प्रतिमाकी मुद्रा है; अथवा पूर्वमें भगवानके पास मैंने जिस आत्माको देखा था वह यही आत्मा है—ऐसा मतिज्ञान जान सकता है। देहादि सभी संयोग अत्यंत पलट गये होने पर भी मतिज्ञानकी निर्मलताकी कोई ऐसी ताकत है कि 'पूर्वमें देखा हुआ आत्मा यही है' ऐसा वह निःशंक जान लेता है। परन्तु, 'ऐसी ताकतवाले जीव अभी यहाँ भी विद्यमान हैं।'

तर्क अर्थात् ज्ञानमें साधन-साध्यका सम्बन्ध जान लेना; जैसे—जहाँ धूम हो वहाँ अग्नि होती है, जहाँ अग्नि न हो वहाँ धूम नहीं होता। जहाँ समवसरण हो वहाँ तीर्थंकर भगवान होते हैं, जहाँ तीर्थंकर भगवान न हो वहाँ समवसरण नहीं होता। अथवा, जिस जीवको वस्त्रग्रहण है उसे छठ्ठा गुणस्थान नहीं होता, छठ्ठा गुणस्थान जिसके हो उसे वस्त्रग्रहण नहीं होता। इसप्रकार हेतुके विचारसे ज्ञान करना वह तर्क है।

अनुमान :—हेतुसे जो जाना इसके अनुसार साध्यवस्तुका ज्ञान करना, अर्थात् साध्य-साधनका तर्क लगाके साध्यवस्तुको पहिचान लेना इसको अनुमान कहते हैं। जैसे—यहाँ अग्नि है क्योंकि धूम दिखता है; यहाँ तीर्थंकर भगवान विराज रहे हैं क्योंकि समवसरण दिखता है; इस जीवको छठ्ठा गुणस्थान या मुनिदशा नहीं है क्योंकि वस्त्रग्रहण है। इसप्रकार मतिज्ञानसे अनुमान हो जाता है। यह अनुमान कुछ संशयवाला नहीं होता परन्तु चोक्कसरूप होता है।

इसके उपरान्त आगम अनुसार जो ज्ञान हो उसे आगमज्ञान कहते हैं। यह श्रुतज्ञानका प्रकार है। ये स्मृति आदि पाँच प्रकार परोक्षज्ञानके हैं।

ये पाँचों ज्ञान—प्रत्यक्ष या परोक्ष वे सब—अपने ही से होते हैं, परसे ज्ञान नहीं होता। परोक्षज्ञान भी कहीं इन्द्रिय या मनसे नहीं होता। जाननस्वभावी आत्मा अपने स्वभावसे ही ऐसी अवस्थारूप परिणमता है। जैसे मिठास स्वभाववाला गुड़ कभी मिठासके बिना नहीं होता, और न इसकी मिठास परमेंसे आती है, वैसे ज्ञानस्वभावी आत्मा कभी ज्ञानके बिना नहीं होता, और न इसका ज्ञान परमेंसे आता है। ज्ञानसे परचीज ज्ञात होती है, परन्तु ज्ञान कहीं परमें जाकरके नहीं जानता, और परमेंसे ज्ञान नहीं आता।

ऐसी स्वतंत्रताकी समझके उपरान्त यहाँ तो अंदरके स्वानुभवके वक्तकी सूक्ष्म बात है। स्वानुभवदशामें धर्मीके ज्ञानका प्रत्यक्ष-परोक्षपना किस प्रकार है यह अब कहते हैं।

(क्रमशः) *

तुम मोक्ष चाहको धार नाथ,
जो भी लक्ष्मी सम्पूर्ण साथ;

मुक्तिका मार्ग

(सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन) (प्रवचन : ६)

अरहंत देवका सच्चा सेवक कैसा होता है ?

खर्च करनेसे लक्ष्मी कम नहीं होती किंतु यदि पुण्य घट जाये तो लक्ष्मीके घटते देर नहीं लगती। जो यह मानते हैं कि खर्च करनेसे लक्ष्मी घट जाती है उन्हें पुण्यका भी भरोंसा नहीं है। जब सच्चे देव-शास्त्र और गुरुको पहचान कर उनके लिए तन-मन-धनका हर्षपूर्वक उपयोग करता है तब व्यवहारसे भगवानका भक्त कहलाता है। कुदेवादिका सेवन छूटकर अरहन्तदेवका प्रशस्त शुभराग होने पर गृहीतमिथ्यात्व छूटता है और अंतरस्वभावकी शक्तिके द्वारा शुभरागका भी इन्कार कर दे कि 'यह राग मेरा स्वरूप नहीं है' तो इसप्रकार शुद्ध स्वभावकी श्रद्धा करने पर उसके परमार्थ सम्यक्त्व होता है, और अनादिका अगृहीतमिथ्यात्व छूटता है; तभी वह वास्तवमें जिनेन्द्र भगवानका भक्त होता है, वही जैन है।

प्रश्न—आपने तन, मन और धन खर्च करनेकी बात कही है सो ठीक है किन्तु यदि इन तीनोंमेंसे धनको छोड़कर तन और मन लगाया जाय तो ६६ प्रतिशत लाभ होगा या नहीं ?

उत्तर—एक प्रतिशत भी लाभ नहीं होगा। घरके लड़कोंके लिए क्यों सब कुछ करते फिरते हो ? 'पाँच लाखकी पूंजी है उसे तुझे देनेका भाव तो है किन्तु तुझे एक पाई भी नहीं दूँगा।' इस प्रकार यदि अपने लड़केसे बात की जाय तो वह नहीं चल सकती; इसीप्रकार जिसे देव-गुरुकी सच्ची भक्ति है वह देव-गुरु-धर्मकी प्रभावना, भक्ति इत्यादिका प्रसंग आनेपर हर्षसे कूदने लगता है और कहता है कि अनन्तकालमें मेरे मनके आँगनमें त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरदेव पधारे हैं। मैं अपने भगवानके लिए सर्वस्व अर्पित कर दूँगा। ऐसी भावना तो एकबार ला। सच्चे देव-गुरुका संयोग मिलना अनन्तकालमें दुर्लभ है। देवपद और राजपद इत्यादि मिलना सुगम है किन्तु सच्चे देव-गुरुकी प्राप्ति दुर्लभ है।

यह धर्म अपूर्व है, यही करनेयोग्य है, सब कुछ छोड़कर सच्चे देव-गुरु और धर्मकी शरणमें एकबार अर्पित हो जा; जो भगवानका भक्त है वह सुदेव, सुगुरु और

सब चक्र चिन्ह सह भरत–राज्य,
जीरण तृणवत् छोडा सुराज्य।८८।

सुधर्मके लिए लक्ष्मीका अमुक निश्चित भाग दानमें अवश्य निकालता है, उत्कृष्टरूपसे चतुर्थ भाग निकालता है, मध्यमरूपसे छठ्ठा भाग निकालता है, और जो जघन्य अर्थात् कमसे कम दसवाँ भाग तो अवश्य दानमें लगाता है। संसारमें लड़कों–बच्चोंके लिए क्यों संग्रह करके रख छोड़ते हो ? जिसे देव, गुरु, धर्मकी सच्ची रुचि उत्पन्न हो गई है, उसे तन, मन, धन खर्च करनेकी उमंग हुए बिना नहीं रहती।

अरे भाई ! तुझे अपने इस उत्तम मनुष्यभवका लेखा करना है या नहीं ? यदि तुझे अपने मानवभवको सफल करना हो तो सच्चे देव-गुरु और धर्मको पहचान कर उनकी श्रद्धा कर, उनकी भक्ति और प्रभावना इत्यादिमें तन, मन, धन और ज्ञानको लगा। संसारके व्यवहारमें जब कोई अच्छा महेमान घर आया हो तब उसकी सुविधाका कितना ध्यान रखा जाता है ? उसीप्रकार त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर भगवान और परमगुरु अनंतकालमें बड़े भाग्यसे तेरे आंगनमें पधारे हैं, उनके प्रति तुझे भक्ति पैदा न हो और यह विचार न आये कि उनकी सुविधा-व्यवस्था भक्ति कैसे करनी चाहिये तो कहना होगा कि तुझे देव-गुरु-धर्मके प्रति सच्ची प्रीति नहीं है।

प्रश्न—आपने ही तो कहा है कि परद्रव्यका परिणमन आत्माके आधीन नहीं है तो हम देव-गुरुका क्या करें ?

उत्तर—यह सच है कि परका परिणमन आत्माके आधीन नहीं है, किन्तु भैया ! यदि तुझे परसम्बन्धी भाव ही पैदा न होता हो तब तो ठीक है, लेकिन अभी तू वीतराग तो हो नहीं गया जिससे कि तेरे शुभाशुभ भाव ही न हो। तुझे स्त्री, पुत्र सम्बन्धी अशुभराग होता है और विषय कषायके अशुभभाव भी होते हैं किन्तु जब देव-गुरु-धर्म सम्बन्धी शुभभावकी बात होती है तब तू कहता है कि परद्रव्यका परिणमन आत्माके आधीन नहीं है, इसका अर्थ यही हुआ कि तुझे शुभ और अशुभका विवेक ही नहीं है, और जब शुभाशुभका विवेक ही नहीं है तब शुभाशुभ रहित आत्मस्वभावकी पहिचान कहाँसे करेगा ?

''ज्ञानी कहते हैं कि शुभरागसे धर्म नहीं होता इसलिए हमें देव-गुरुकी भक्तिकी ओर कोई उत्साह नहीं होता''—एक ओर तो यों कहता है और दूसरी ओर स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी इत्यादिके अशुभरागमें रत रहता है, इसका मतलब यह हुआ कि उस जीवको निमित्तकी परीक्षा करनी नहीं आती, और अपने परिणाममें भी विवेक नहीं है।

(शेष देखे पृष्ठ ३२ पर)

तुम रूप परम सुन्दर विराज,
देखनको उमगा इन्द्रराज;

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

❋ निश्चय वस्तुस्वरूप ❋

यह अनुभवप्रकाश ग्रन्थ है। आत्माको परद्रव्यसे भिन्न जानने पर स्वभावसन्मुख दृष्टि हो, तब धर्म होता है।

प्रथम दृष्टान्त देते हैं :—जिसप्रकार हाथमें लिए हुए चिन्तामणिको भूल जाए और काँचको रत्न माने तो वह रत्न नहीं हो जाएँगा और चिन्तामणिको काँच जाने तो वह काँच नहीं हो जाएँगा और उसका चिन्तामणिपना चला नहीं जाएँगा। वैसे ही अज्ञानी जीव आत्माको शरीर, कर्म आदि पररूप जाने उससे आत्मा पररूप नहीं हो जाता। शरीर, मन, वाणीकी क्रिया स्वयं करता है ऐसा माने तो परके ऊपर दृष्टि रहती है तथापि आत्मा अपना स्वभाव कभी छोड़ता नहीं है, अपना प्रमाण–स्वरूप नहीं छोड़ता। प्रमाण अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी सीमाको नहीं छोड़ता। कोई द्रव्य अपने प्रदेशको कभी नहीं छोड़ता। आत्मा भी अपने असंख्यप्रदेशको कभी नहीं छोड़ता, परको अपना माने इसलिए पर अपना नहीं होता और स्वयं पररूप नहीं हो जाता।

संसारदशा हो या सिद्धदशा हो,—कोई द्रव्य अपनी सीमाको लाँघकर परमें नहीं जाता। द्रव्य, क्षेत्र, भाव त्रिकाल है और काल अर्थात् संसारदशा अथवा सिद्धदशा जो भी हो उसे जीव छोड़ता नहीं है। सर्व पदार्थ अन्य द्रव्यके बाहर लोटते हैं। निगोद दशा हो अथवा साधक दशा हो या सिद्ध दशा हो—प्रतिसमय द्रव्य अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें है। गुण–पर्यायका पिण्ड वह द्रव्य है, अवगाहन अपना क्षेत्र है, अपनी समय–समयकी अवस्था वह काल है और शक्तियाँ वह भाव है।

आत्मामें परके कारण विलक्षणता नहीं होती। आजके कोई पण्डित परके कारण विलक्षणता होना कहते हैं। जैसे कि :—स्मशानमें अकेला मनुष्य जाए तो डर लगता है और दो मनुष्य साथ जाए तो थोड़ा कम डर लगता है और हाथमें हाथियार लेकर जाए तो उससे भी कम डर लगता है; देखो निमित्तका प्रभाव!—ऐसा अज्ञानी जीव कहते हैं। इसप्रकार

दो-लोचन-धर कर सहस नयन,
नहिं तृप्त हुआ आश्चर्य भरन।८९।

संयोगको अनुकूल–प्रतिकूल माननेवाले संयोगमें एकताबुद्धि द्वारा विपरीत प्ररूपणा करते हैं। वहाँ संयोगानुसार डर नहीं है परन्तु अपनी योग्यतानुसार डर लगता है, निमित्तके कारण फेर नहीं पड़ता। मुर्देके पास अथवा स्मशानमें चींटी आदि जीव होते हैं उनको डर नहीं लगता। इसलिए निमित्तका प्रभाव उपादान पर किंचित् भी नहीं होता। प्रत्येक जीवको भय लगता है वह अपने कारण लगता है, परके कारण नहीं। संज्ञी जीवको ज्ञान अधिक है, इसलिए भय है? नहीं, वह भय भी अपने कारण है।

अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपनेमें है। निश्चयसे वस्तु अपनेमें ही है, इसलिए अपनी वस्तुकी श्रद्धा करो। पर्यायमें स्वतंत्र, गुणमें स्वतंत्र और द्रव्यमें स्वतंत्र है। किसीकी स्वतंत्रता कोई लूटता नहीं है। आत्मा ज्ञानादि अनन्त गुणोंका पिण्ड है। अपना स्वभाव कहीं गया नहीं है— ऐसा विचारे तो शान्ति प्राप्त हो। मोक्षमार्गरूप उपायसे मोक्षरूपी उपेय प्राप्त करे। उपेय क्या है? आत्माकी पूर्णदशा हो वह उपेय है। संसार दशामें जड़कर्म और शरीरमें आत्मा गुप्त है और परकी भावनासे दुःख प्राप्त किया है। स्वभावसे च्युत होनेके कारण अपने ज्ञायकस्वभावको अर्थात् परमेश्वर पदको प्राप्त नहीं हुआ। उसका उपाय हो तो उपेयको प्राप्त करें। मोक्षका अथवा परमेश्वरपद प्रकट करनेका उपाय कहते हैं। उपयोगको परोन्मुख किया है उसे स्वोन्मुख करना है। यहाँ सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र प्रकट करे उसे स्वोन्मुख किया कहा जाता है।

अपनेसे जो भूल हुई है वह अपनेसे सुधरती है। शुद्धउपयोग एक ही उपाय है। व्रत, तप, संयमादि करे वह शुभभाव पुण्यका उपाय है, वह मोक्षका उपाय नहीं है किन्तु बंधका उपाय है। परसे अर्थात् निमित्तसे तथा संयोगसे उपयोग हटा, इसलिए स्वसन्मुख हुआ। सम्यग्दर्शन भी शुद्ध उपयोगमें प्रकट होता है, उसका फल मोक्ष है।

तथा ग्रन्थका उपदेश भी निमित्तकारण कहा है। वीतरागकी वाणी निमित्तकारण है। यहाँ ग्रन्थ–पठन नहीं कहा है, ज्ञानी पुरुषोंका उपदेश निमित्तकारण है। आत्माके शुद्ध उपयोगसे शुद्धता होती है, वहाँ उपदेश निमित्त है। स्वरूपकी ओर अनुभवकी एकदेश शुद्धता चढ़ती जाए, तदनुसार मोक्षमार्गमें चढ़ते हैं, परन्तु शुभभावके कारण मोक्षमार्गमें नहीं चढ़ा जाता।—ऐसा जिनेन्द्र भगवानका निराबाध उपदेश है। स्वयं आत्माके आधारसे शुद्धोपयोग करके, स्वभावोन्मुख हो तो वाणी आदिको निमित्त कहा जाता है। मैं ज्ञानानन्द हूँ—ऐसी दृष्टि करे तो स्वसन्मुख हो। आत्मोपयोगसे समाधि होती है तब साक्षात् शिवपंथ सुगम होता है। इसप्रकार अनेक संत पुरुष स्वरूपसमाधि धारण कर–करके पार हुए। अब समाधिका वर्णन करते हैं।

(क्रमशः) ✻

जो पापी सुभट-कषाय-धार,
ऐसा रिपु मोह अनर्थकार;

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

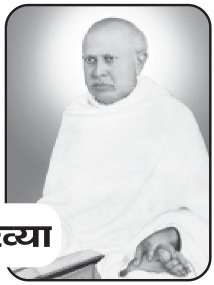

(तीसरी ढाल, गाथा-१)

निश्चयसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी व्याख्या

परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें रुचि, सम्यक्त्व भला है;
आपरूपको जानपनों सो, सम्यक्ज्ञान कला है।
आपरूपमें लीन रहे थिर, सम्यक्चारित सोई;
अब व्यवहार मोखमग सुनिये, हेतु नियतको होई॥२॥

परद्रव्योंसे भिन्न, परद्रव्यकी ओर रुचिवाले रागादि भावोंसे भी भिन्न और स्वयंके स्वभावसे अभिन्न–ऐसे आत्माकी श्रद्धा-रुचि वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थाश्रममें गृहसामग्रीके बीच रहता हो, व्यापार-धंधामें हो या राज-पाटके बीचमें हो, शुभाशुभभाव भी उस प्रकारके हो रहे हो, फिर भी अंतरकी दृष्टिसे स्वयंके आत्माको उन सभीसे पृथक् शुद्ध चैतन्यभावरूप ही देखता है। वह परद्रव्यमें नहीं है, उसका सम्बन्ध होने पर भी उन संयोगसे भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा मैं हूँ–इस प्रकार वह स्वद्रव्यका श्रद्धान करता है; यह सम्यक्त्व भला है–हितरूप है–कल्याणरूप है। निश्चय सम्यग्दर्शनको भला कहा है वह ही सत्यार्थ है, वह ही यथार्थ मोक्षमार्ग है। 'परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें रुचि सम्यक्त्व भला है' –ऐसा कहा अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शनका विषय मात्र स्वतत्त्व है; परसे भिन्न स्वयंके स्वतत्त्वको लक्षमें लेने पर रागसे भी पृथक् अनुभव होता है। ऐसे अनुभवपूर्वक आत्माकी श्रद्धा वह यथार्थ सम्यग्दर्शन है; इसमें मात्र स्वतत्त्वकी दृष्टि है। स्वलक्ष करते ही परद्रव्यों और परभावोंके साथ एकताबुद्धि छूट जाती है। इस प्रकार स्वमें एकत्वबुद्धिरूप आत्मरुचि वही सम्यग्दर्शन है।

'आपमें रुचि'–आप अर्थात् स्वयंका आत्मा, उसका स्वरूप पहिचानकर, निर्विकल्प स्वसंवेदन सहित उसकी श्रद्धा करनी चाहिये, बाह्यदृष्टिसे संयोगमें और रागमें 'यह मैं' ऐसा मिथ्या माना था वह मान्यताको छोड़कर अंतरमें 'यह मैं' इस प्रकार निजस्वभावकी प्रतीति करने पर सम्यक्त्व हुआ, स्वयंका आत्मा जैसा है वैसा पहिचानमें आ गया। मात्र शुद्ध

सम्यक्त्व ज्ञान संयम सम्हार,
इन शस्त्रनसे कीना संहार।९०।

स्वभावमें ही रुचिका प्रवेश हुआ, वहाँ कोई विकल्पमें रुचि न रही, अर्थात् उसके अवलम्बनसे धर्मका कुछ लाभ होगा–ऐसी बुद्धि न रही। परसे पृथक् और विकल्पसे पृथक् होकर शुद्धात्मारूप ही परिणमित हुआ; ऐसा सम्यक् परिणमन वह हितकारी है, वह शुद्ध है, वह निश्चयमोक्षमार्गका अंग है। मोक्षको साधनेकी कला है। 'रुचि सम्यक्त्व भला है... और सम्यग्ज्ञान कला है' आत्माकी रुचि और आत्माका ज्ञान वह मोक्ष साधनेकी उत्तम कला है। परका जानपना वह शास्त्रकी ओरका जानपना नहीं है, लेकिन आपरूप अर्थात् आत्माका स्वरूप उससे भिन्न जानपना वह यथार्थ ज्ञानकला है। जीवने बाह्यकी अनेक कला सीखी लेकिन आत्मज्ञानकी कला उसमें पूर्वमें कदापि जानी नहीं। ज्ञान आत्मस्वभावकी सन्मुख हुआ तब सम्यग्ज्ञानकी कला प्रकट हुई, आत्मज्ञान हुआ और मोक्षमार्ग प्रकट हुआ। आत्मज्ञानके साथ नव तत्त्व आदिका व्यवहार जानपना गौण हो गया। 'जिसने आत्माको जाना उसने सर्वको जान लिया–उसकी ज्ञानकला खिल उठी, अब आगे वृद्धिगत होकर वह केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा होगी। केवलज्ञान प्रकट करनेके लिये यह सम्यग्ज्ञानकला है। वह केवलज्ञानके साथ आनंदकी केली करता है, आनंदकी क्रिड़ा करता हुआ वह केवलज्ञानकी साधना करता है। अहा ! चतुर्थ गुणस्थानमें गृहस्थका सम्यग्ज्ञान वह भी केवलज्ञानकी जातिका ही है। पूर्ण चंद्रका अंश चंद्रकी जातिका ही होता है। वह अन्य नहीं होता है; वैसे सम्यक्मतिश्रुतज्ञान वह केवलज्ञानकी जातिका ही है, वह कोई रागकी जातिका नहीं है। अहा ! शुद्ध चैतन्यस्वरूपका ज्ञान होने पर केवलज्ञानकी एक कला प्रकट हुई। ऐसी भेदज्ञानकला वह मोक्षको साधनेवाली है।

परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें रुचि, सम्यक्त्व भला है;
आपरूपको जानपनों सो, सम्यक्ज्ञान कला है।

हे जीव ! मोक्षसुखके लिये तू ऐसे सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्ररूप मोक्षमार्गमें उद्यमी हो जा। स्वयं आत्माके सन्मुख होकर आत्माकी रुचि वह सम्यग्दर्शन है। आत्माका ज्ञान वह सम्यग्ज्ञान है और सम्यक्चारित्र कैसा है ? कि–

आपरूपमें लीन रहे थिर, सम्यक्चारित्र सोई।

परसे भिन्न स्वयंका जो स्वरूप रुचिमें और ज्ञानमें लिया वह निजस्वरूपमें स्थिरता-

यह काम धरत बहु अहंकार,
त्रय लोक प्राणिगण विजयकार;

लीनतारूप वीतरागभाव वह सम्यक्‌चारित्र है। देखो, निजस्वरूपमें लीनताको भगवानने चारित्र और मोक्षमार्ग कहा है। शुभरागको चारित्र या मोक्षमार्ग नहीं कहा है। शुभाशुभ क्रियायें वे कर्मके आस्रवका हेतु है; कर्मके आस्रवके हेतुरूप उस क्रियासे निवृत्ति, और शुद्ध-ज्ञानस्वरूपमें प्रवृत्ति, वह मोक्षमार्गका चारित्र है; ऐसे सम्यक्‌चारित्रमें हमेशा लगे रहनेको कहा है। अरे, वास्तविक चारित्र क्या है–उसकी भी जीवोंको खबर नहीं है। यथार्थ श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रका स्वरूप यहाँ संक्षिप्तमें दर्शाया है। मोक्षमार्गरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह तीनों भाव आत्मामें समाहित है, कोई रागमें या शरीरकी क्रियामें वह नहीं है।

सहज एक ज्ञायकभाव—कि जो शुभाशुभ रागादि परभावरूप कदापि हुआ नहीं ऐसा शुद्ध आत्मा, उसकी अंतरंग अनुभूतिमें 'यह मैं' ऐसी निर्विकल्प प्रतीति वह सम्यग्दर्शन है। आत्मा ऐसा है ऐसे उसे यथार्थ जानकर उसका श्रद्धान होता है। सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शन और सम्यक् अनुभूति तीनों एक साथ होती है। जिस वस्तुको जानता ही न हो तो उसकी श्रद्धा कैसे करे? वस्तुको जाने बिनाकी श्रद्धा तो खरगोशके सींगके समान श्रद्धा करने जैसी मिथ्याश्रद्धा है। श्रद्धा किसकी?–कि जो वस्तु सत् हो उसकी। सत् ऐसा जो ज्ञायकभाव, उसे दृष्टिमें और ज्ञानमें लिया तब सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ; उसके साथ आनंदका अनुभव भी है। ऐसे आनंदस्वरूप आत्माका ज्ञान वह यथार्थ ज्ञान है, वह शुद्धज्ञानकी कला है, वह मोक्षको साधनेवाली वीतरागी-विद्या है। मोक्षकी प्राप्तिके लिये यह 'बीज-ज्ञान' है। ज्ञानकी बीज उदित हुई वह आगे वृद्धि होकर पूर्णिमा होगी। बाह्यके अप्रयोजनभूत पदार्थोंका जानपना करे उसमें आत्माका कुछ भी हित नहीं है , वह बाह्य ज्ञान द्वारा मोक्षकी साधना होती नहीं है। अरे, मात्र परलक्षसे शास्त्रका जानपना वह भी मोक्षकी साधना कर सकता नहीं। जो ज्ञान आत्माके मोक्षका साधन न हो, जो आनंदका अनुभव न दे उसे ज्ञान कौन कहे? शुद्ध आत्माकी ओर झुका हुआ ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। वह ही मोक्षकी साधना करनेवाला है और वह ही आनंदका दाता है। अंतरमें शुद्धात्माको ऐसे ज्ञानसहित शास्त्र आदिका ज्ञान हो उसे व्यवहारसे मोक्षका कारण कहते है। शुद्धात्माकी सम्यक्‌श्रद्धा सहित नव तत्त्वकी प्रतीतिको व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो शुद्धात्माकी स्वसत्ताको ही अवलंबनेवाला है, उसमें परका किंचित् अवलनम्बन नहीं है।—ऐसा स्वाधीन आत्माश्रित निश्चयमोक्षमार्ग है। (क्रमशः) ✻

तुमरे ढिग पाई उदयहार,
तब लज्जित हुआ है अपार।९१।

* चारों अनुयोगके अभ्यास का प्रयोजन *

प्रतिमाकी स्थापना आदि करे उसे पुण्य होता है,–ऐसा निमित्तका कथन करके शास्त्रोंमें शुभ परिणामका वर्णन किया है। लेकिन उससे धर्म होता है ऐसा नहीं। निर्दोष आहार करनेसे संवर-निर्जरा होती है और सदोष आहार करनेसे पाप होता है–ऐसा कोई कहे तो यह बात सर्वथा मिथ्या है। कोई ऐसा कहे कि अनुकंपाबुद्धिसे अविरतिको आहार दे वह पापभाव है, यह बात भी मिथ्या है; क्योंकि कोई अनुकंपासे आहार दे तो उसे पुण्यबंध होता है, उसे भी जो समझता नहीं और चरणानुयोगमें ऐसे शुभभावका कथन किया हो उसे धर्म माने तो वह भी मिथ्यादृष्टि है। पुण्य-पापके स्वरूपको वह समझता नहीं है।

करणानुयोगमें मार्गणास्थान आदिका वर्णन किया है। वहाँ भेदसे कथन किया है। उस भेदको समझकर अभेददृष्टि करना वह करणानुयोगका प्रयोजन है। उसे समझे नहीं और मात्र भेदमें ही रुक जाय तो वह मिथ्यादृष्टि है। द्रव्यसंग्रहकी टीकामें कहा है कि हाथकी क्रिया आत्मा तीन कालमें कदापि कर सकता नहीं। ज्ञानावरणीय कर्मके कारण ज्ञानकी पर्याय रुकती है–ऐसा नहीं है। समयसारमें कहा है कि चौदह गुणस्थानका भेदसे कथन किया है वह भी आत्माका स्वरूप नहीं है।

द्रव्यानुयोगका अभ्यास करके, एकांत आत्मा शुद्ध ही है और पर्यायमें विकार ही नहीं है–ऐसा माने तो वह द्रव्यानुयोगके प्रयोजनको समझा नहीं है। प्रथम आत्माका यथार्थ स्वरूप समझा हो, पश्चात् उसे विशेष स्थिरता हो उसे चारित्रदशा कहते हैं। पर्यायमें जो निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है उसका ज्ञान गोम्मटसारमें कराया है; और द्रव्यानुयोग, पर्याय आदिके भेद छोड़कर अभेद स्वरूपका अवलम्बन करो ऐसा कहते है। शास्त्रमें ऐसा कथन आता है कि ज्ञानावरणीय कर्मसे आत्माका ज्ञान अवरोध होता है तो वह निमित्त कथन है। मोहनीय कर्मके कारण रागद्वेष होता है ऐसा है ही नहीं। रागद्वेषमें वह निमित्तमात्र है–ऐसा बताने हेतु ऐसा कथन किया है। चारों अनुयोगका तात्पर्य वीतरागता है। जिन शास्त्रमें तीन लोक का निरूपण किया है उसका अभ्यास करे, लेकिन उसका प्रयोजन विचारता नहीं, अभेददृष्टि करता नहीं है, शुद्धोपयोग करता नहीं, उसे कुछ भी लाभ होता नहीं। अज्ञानी शास्त्रका अभ्यास करे लेकिन उसका प्रयोजन विचारे नहीं तो वह भी मिथ्यादृष्टि है।

तत्त्व सम्बन्धी दो शब्द

श्री कानजीस्वामीकी विचारधारा

सोनगढमें परम पूज्य सद्‌गुरुदेव श्री कानजीस्वामी संवत १९९१ से विराजते है। उन्होंने १९९१के चैत्र शुक्ल १३ना रोज स्टार ऑफ इन्डियामें श्री पार्श्वनाथ भगवानके चित्रपट समक्ष परिवर्तन करके स्थानकवासी संप्रदायका त्याग करके श्री दिगम्बर जैनधर्म अंगीकार किया और उसका स्वरूप वे सुबह और दोपहर दो समयके व्याख्यानसे तथा रात्रिमें एक घन्टे चर्चासे स्पष्टरूपसे जिज्ञासुओंको समझाते है। इस प्रकार जीवोंको अध्यात्ममें रस जाग्रत होनेपर मुमुक्षुओंकी संख्या दिन-प्रतिदिन वृद्धिगत होने लगी। मात्र सौराष्ट्र गुजरातमेंसे नहीं किन्तु दिल्ही, कोलकात्ता, मुंबई आदि हिंदुस्तानके अन्य शहरोंसे और आफ्रिका, बर्मा आदि स्थलोंसे मुमुक्षुओं उनके सद्‌उपदेशका लाभ लेने हेतु सोनगढ आते है, उनका उपदेश सुनकर बहुतसे लोग प्रभावित हुए है और तत्त्वज्ञानका अपूर्व लाभ प्राप्त करते हैं।

कई लोगोंमें ऐसी एक मान्यता प्रचलित हुई है कि सोनगढमें श्री कानजीस्वामी श्री समयसार पर ही प्रवचन देते है। यह वात सत्य नहीं है। जिनको उनका समागम नहीं, वे सत्य हकीकत जाने बिना ऐसा मानते है कि वास्तविक हकीकत ऐसी है कि सोनगढमें प्रारम्भसे ही परम पूज्य सद्‌गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने अनेक शास्त्रों पर व्याख्यानों किये है उनके कतिपय नाम निम्नोक्त है :

(१) श्री समयसार, (२) श्री प्रवचनसार, (३) श्री नियमसार, (४) श्री पंचास्तिकायसंग्रह, (५) श्री अष्टपाहुड, (६) श्री आत्मानुशासन, (७) श्री स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा, (८) श्री द्रव्यसंग्रह, (९) श्री परमात्मप्रकाश, (१०) श्री पद्मनंदी पंचविंशतिका, (११) श्री अमृतचंद्राचार्य कृत तत्त्वार्थसार, (१२) श्री धवल भाग १, (१३) श्री भक्तामर स्तोत्र, (१४) श्री समाधिशतक, (१५) श्री इष्टोपदेश, (१६) श्री तत्त्वज्ञान तरंगीणी, (१७) श्री मोक्षमार्गप्रकाशक, (१८) श्री समयसार नाटक, (१९) श्री अनुभवप्रकाश, (२०) श्री सत्तास्वरूप, (२१) श्री पंडित टोडरमलजीकी रहस्यपूर्ण चिट्ठी, (२२) श्री पंडित बनारसीदासजीकी परमार्थ वचनिका, (२३) श्री पंडित बनारसीदासजीके उपादान-निमित्तके दोहे, (२४) श्री भैया भगवतीदासजी कृत उपादान-निमित्तका संवाद, (२५) श्री आत्मसिद्धि (श्रीमद् राजचंद्रजी कृत), (२६) श्री अपूर्व अवसर (श्रीमद् राजचंद्रजी कृत) आदि अनेक शास्त्रों पर उपदेश दिये है। पुनश्च, श्री जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्टकी ओरसे जो २७९ शास्त्र 'भगवान कुंदकुंद-कहान शास्त्रमाला'के अंतर्गत प्रकाशित हुए है उसमें तथा 'आत्मधर्म' मासिकमें तथा 'श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद' दैनिकमें इसमेंसे कई शास्त्रोंके

व्याख्यान छप गये हैं। जो सत्य हकीकतसे अपरिचित है वह ही 'सोनगढमें एक समयसारका ही वांचन चलता है' ऐसी हकीकत प्रस्तुत करते है।

श्री समयसारमें अनेक प्रकारसे वस्तुका स्वरूप दर्शाया है और प्रथमानुयोगके शास्त्रों, चरणानुयोगके शास्त्रों और करणानुयोगके शास्त्रोंमें इससे विपरीत वर्णन है, ऐसी जिस जीवकी मान्यता है वह मान्यता यथार्थ नहीं है। क्योंकि वीतरागी ज्ञानीओंके कोई भी शास्त्र, बड़े हो या छोटे हो, किसी भी अनुयोगके हो, किन्तु वे वीतरागताके ही पोषक होते हैं। शुभभावसे वास्तवमें धर्म होता है ऐसा कोई भी शास्त्र कहते नहीं है, यदि ऐसा हो तो शास्त्रोंमें विरोधाभास आ जाये, लेकिन वीतरागी शास्त्रोंमें कदापि विरोधाभास हो सकता नहीं है।

पुनश्च सोनगढसे श्री जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्टकी ओरसे तत्त्वार्थसूत्र अर्थात् मोक्षशास्त्र गुजराती तथा हिन्दी टीका सहित प्रकाशित हो चुके हैं। उसमें अलग-अलग (५२) बावन शास्त्रोंके आधार दिये गये है अर्थात् सोनगढमें श्री समयसारके अतिरिक्त अन्य शास्त्रों माननेमें आते नहीं है ऐसा माननेवालेको यह मोक्षशास्त्र तथा सोनगढसे प्रकाशित अन्य शास्त्रोंको पढ़ ले ऐसी विनंती की जाती है जिससे उनकी मान्यतामें सत्य है कि नहीं उसका उन्हें ख्याल आ जायेगा।

पुनश्च कतिपय लोग ऐसा कहते हैं कि परम पूज्य गुरुदेव क्रियाओंका निषेध करते है, यह वात तद्दन असत्य है। वास्तविकरूपसे क्रियाका यथार्थ स्वरूप क्या है, उसको वे यथार्थरूपसे समझाते है। वे ऐसा समझाते है कि क्रिया तीन प्रकारकी है। एक जड़की क्रिया, दूसरी जीवकी विकारी क्रिया और तीसरी जीवकी शुद्ध क्रिया (अविकारी क्रिया)। उसमें अब जड़की क्रिया आत्मा वास्तवमें कर सकता नहीं है, इसलिये उससे जीवको कदापि लाभ या नुकशान होता नहीं है। शरीरके साथ एकत्वपनेकी बुद्धिवालेको शरीरकी क्रियासे लाभ होता है ऐसा भास होता है, किन्तु यह मान्यता तत्त्वसे विरुद्ध है। जीवकी विकारी क्रियासे जीवको कदापि धर्म होता नहीं है। क्योंकि विकारी क्रिया स्वयं ही संसार है, और उसे तो जीव अनादिसे करता आया है। जीवकी शुद्ध क्रिया वह धर्म है। इसलिये जीवोंको तत्त्व समझकर आत्माश्रित क्रिया करनी चाहिये ऐसा उनका उपदेश है।

कुछ वर्षों पूर्व पूज्य गुरुदेवश्री, सोनगढसे बाहर विहारमें थे, तब अन्य संप्रदायके एक भाईने प्रश्न किया कि आप क्रियामें मानते हो ? तब उनका उत्तर मिला कि हम तो छह द्रव्यों जो क्रिया करते है ऐसा मानते है। पुनः उसने पूछा कि 'आप पुण्यको मानते हो?' तब उन्होंने कहा कि 'नव तत्त्वमें पुण्य तत्त्व आ जाता है। नव तत्त्वको हम मानते है, इसलिये पुण्य तत्त्वको भी मानते है।'

पुण्य तत्त्वके सम्बन्धमें जीव अनादिसे भूल कर रहा है। जहाँ एक तत्त्वमें भूल हो वहाँ सभी तत्त्वमें भूल होती ही है। अनादिसे अज्ञानी जीवो, अज्ञानदशाके कारण पुण्यभावसे लाभ होता है ऐसा मान रहा है, किन्तु पुण्यभावको भगवानने आस्रव और बंध कहा है, तत्त्वार्थसूत्रमें श्री उमास्वामी भगवानने वैसा ही समयसारमें श्री भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवने आस्रव और बंधमें माना है और वह संसारका कारण है। जो संसारमें ले जाय उसे भला कैसे कहा जाय ?

समयसारकी गाथा १४५में उसी प्रकार स्पष्टरूपसे कहा है कि पुण्यसे धर्म होता है ऐसा माननेवाले सर्वज्ञताके मतसे बाहरके है, ऐसा श्री कुंदकुंद आचार्यदेव दर्शाते है और उनके अनुसार ही पूज्य गुरुदेवश्रीका उपदेश है।

धर्मी जीवोंको तथा धर्म प्रकट करनेके इच्छुक जीवोंको पुण्यभाव (शुभभाव) होते है, और वैसे शुभभाव सोनगढके अनुयायीयोंमें भी प्रत्यक्षरूप देखनेमें आते है। सोनगढमें दिगम्बर जिन मंदिर, स्वाध्यायमंदिर, प्रवचन मंडप, अतिथि सेवा समिति, मानस्थंभ, समवसरण, ब्रह्मचयार्श्रम आदि जो मंदिर व संस्थाओंकी रचना विशाल खर्चसे की गई है, उसमें और जीवोंके पुण्यभावमें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ऐसा स्पष्टरूपसे दिखाई दे रहा है। पूज्य गुरुदेवश्रीके करकमल द्वारा देश-विदेशमां ३३ पंचकल्याणक और ३३ वेदी प्रतिष्ठाएँ हुई हैं।

पुनः अनेक जीवों नोकरी, व्यापार, रोजगार छोड़कर यह तत्त्वज्ञानके उपदेशका लाभ लेने हेतु सोनगढमें निवास कर रहे है; उनमें शुभभाव नहीं तो क्या है ? शुभभाव तो है ऐसा विचार करनेवालेको कबूल करना पड़े ऐसा है।

पुनश्च सोनगढके अनुयायीयोंमें छह कुमारिका बहिनोंने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत प्रथम ग्रहण किया, तथा अभी अभी चौदह अन्य बहिनोंने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया है। तत्पश्चात् ८+९+११ बहिनोंने आत्मज्ञानकी प्राप्तिके हेतुसे ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया है यह वात प्रसिद्ध है। ऐसे शुभभावके दृष्टांतों भी जैनधर्मके इतिहासमें अपूर्व है तो शुद्धताकी तो वात ही क्या?

पुनश्च सोनगढके अनुयायीयोंने सोनगढमें तथा राजकोट, पोरबंदर, वांकानेर, मोरबी, सुरेन्द्रनगर, वढवाण, राणपुर, बोटाद, उमराळा, वींछीया, जलगाँव, लाठी, पालेज, वडीया आदि स्थानोंमें दिगम्बर जिन मंदिर बनवाये हैं और वहाँ पर पूजन, दर्शन, स्तुति, भक्ति आदि भी प्रतिदिन की जा रही है। यह बात भी प्रसिद्ध है।

ऐसे अल्प समयमें इतने जिन मंदिरों बननेके दृष्टांत भी कदाचित देखनेमें आते है। ऐसी अपूर्व जैनधर्मकी प्रभावना पूज्य गुरुदेवश्रीके उपदेशसे सौराष्ट्र, गुजरात, हिन्द अने हिन्दसे बाहर हो रही है।

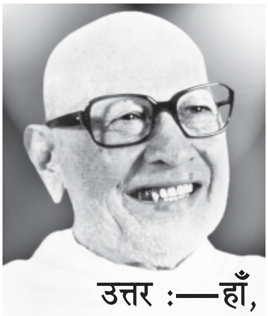

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :—क्या ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्धी भ्रम भी जीवको रहता है?

उत्तर :—हाँ, जीवसे भिन्न पुद्‌गलादि छह द्रव्य ज्ञेय और आत्मा उनका ज्ञायक—ऐसा निश्चयसे नहीं है। अरे! राग ज्ञेय और आत्मा उसका ज्ञायक–ऐसा भी नहीं है। परद्रव्योंसे लाभ तो है ही नहीं; किन्तु परद्रव्य ज्ञेय और उनका तू ज्ञाता—ऐसा भी वास्तवमें नहीं है। ''मैं जाननेवाला हूँ, मैं ही जाननेयोग्य हूँ, मैं ही मुझे जानता हूँ, अपने अस्तित्वमें जो है, वही स्वज्ञेय है।''—इसप्रकार परमार्थका प्रतिपादन पर-तरफका लक्ष छुड़ाया है।

प्रश्न :—''ज्ञेय-ज्ञायकपनेका निर्दोष सम्बन्ध धर्मात्माको होता है।'' कृपया समझाइये?

उत्तर :—शरीर-मन-वाणी परवस्तुएँ हैं, उनके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं; इसलिये 'उनकी अनुकूल क्रिया हो तो मुझे ठीक और प्रतिकूल क्रिया हो तो मुझे अठीक'–ऐसे उनके प्रति मुझे कोई पक्षपात नहीं है, चैतन्य ज्योति ही मेरा स्वभाव है—इसप्रकार प्रथम अपने स्वभावकी पहिचान करनी चाहिये। ज्ञानी जानता है कि मैं तो ज्ञाता हूँ और ये शरीरादि सब पदार्थ मेरे ज्ञेय हैं। मैं ज्ञाता और ये ज्ञेय—इसके अलावा अन्य कोई सम्बन्ध हमारा इनके साथ नहीं है। जिसप्रकार जननीके साथ पुत्रका मातारूप निर्दोष सम्बन्धके अतिरिक्त अन्य किसी अटपटे सम्बन्धकी कल्पना कभी स्वप्नमें भी नहीं हो सकती; उसीप्रकार मैं चैतन्यमूर्ति आत्मा ज्ञायक हूँ और सारे पदार्थ मेरे ज्ञेय हैं, इस ज्ञेय-ज्ञायक निर्दोष सम्बन्धके अतिरिक्त अन्य कोई सम्बन्ध मेरा परद्रव्यके साथ स्वप्नमें भी नहीं है; मेरा तो उनके साथ मात्र जाननेका ही सम्बन्ध है।

जैसे अंधकारमें कोई पुरुष किसीको भ्रमसे अपनी स्त्री समझकर विकारपूर्ण भावसे उसके समीप गया, तत्काल विद्युतप्रकाशमें उसका अवलोकन होते ही ज्ञान हुआ कि यह तो मेरी माता है, वहाँ तब तुरन्त ही उसकी वृत्ति पलट जाती है कि अरे! यह तो मेरी जननी है। जननीकी पहिचान होते ही विकारवृत्ति पलटी और माता-पुत्रके सम्बन्धरूप निर्दोषवृत्ति

तृष्णा सरिता अति ही उदार,
दुस्तर इह-परभव दुःखकार;

जागृत हुई। वैसे ही अज्ञानदशामें परवस्तुको अपनी मानकर उसमें इष्टानिष्ट कल्पना करता था और कर्ता-भोक्ताका भाव करके विकाररूप परिणमता था, किन्तु ज्ञानप्रकाश होने पर भान हुआ कि अहो ! मेरा तो ज्ञायकस्वभाव है और इन पदार्थोंका ज्ञेयस्वभाव है–ऐसा निर्दोष ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्धका भान होते ही धर्मीको विकारभावका नाश होकर निर्दोष ज्ञायकभाव प्रकट होता है। अभी अस्थिरताका राग-द्वेष होने पर भी धर्मीकी रुचि पलट गई है कि मैं तो चैतन्यस्वरूप सबका जाननेवाला हूँ, अन्य पदार्थोंके साथ मेरा ज्ञेय-ज्ञायक स्वभावरूप सम्बन्धके अतिरिक्त कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न :—प्रभु ! मैं संसाररोगसे पीड़ित रोगी हूँ। इस रोगको मिटानेवाले आप जैसे वैद्यके पास आया हूँ। कोई अमोघ उपाय बतलाईये ?

उत्तर :—कोई रोगी है ही नहीं। मैं रोगी हूँ—ऐसी मान्यता छोड़ दे। मेरा चैतन्यस्वभाव त्रिकाल निरोगी परमात्मस्वरूप ही है।

प्रश्न :–सम्यक्त्वका आत्मभूत लक्षण क्या है ?

उत्तर :–स्व-परका यथार्थ भेदज्ञान सदा सम्यक्त्वके साथ ही होता है तथा यह दोनों पर्यायें एक ही स्व-द्रव्यके आश्रयसे होती है, इसलिये भेदविज्ञान सम्यक्त्वका आत्मभूत लक्षण है। गुण-भेदकी अपेक्षासे सम्यक्त्वका आत्मभूत लक्षण निर्विकल्प प्रतीति है और सम्यक्त्वका अनात्मभूत लक्षण भेदविज्ञान है—ऐसा भी कहा जाता है। किन्तु निर्विकल्प अनुभूतिको सम्यक्त्वका लक्षण नहीं कहा, क्योंकि वह सदा नहीं रहती। इतनी बात अवश्य है कि सम्यक्त्वके उत्पत्तिकालमें अर्थात् प्रकट होते समय निर्विकल्प अनुभूति अवश्यमेव होती है, इसलिये उसे 'सम्यक्त्वोत्पत्ति' अर्थात् सम्यक्त्व प्रकट होनेका लक्षण कह सकते हैं। अनुभूति सम्यक्त्वके सद्भावको प्रसिद्ध अवश्य करती है, परंतु जिस समय अनुभूति नहीं हो रही होती है, उस समय भी सम्यक्त्वीके सम्यक्त्वका सद्भाव तो रहता ही है; इसलिये अनुभूतिको सम्यक्त्वके लक्षणके रूपमें स्वीकार नहीं किया जा सकता। लक्षण तो ऐसा होना चाहिये कि जो लक्ष्यके साथ सदैव रहे और जहाँ लक्षण न हो, वहाँ लक्ष्य भी न हो।

प्रश्न :–अनुभूतिको सम्यग्दर्शनका लक्षण कह सकते हैं या नहीं ?

उत्तर :–अनुभूतिको लक्षण कहा है लेकिन वास्तवमें तो वह ज्ञानकी पर्याय है, सही लक्षण तो प्रतीति ही है। केवल आत्माकी प्रतीति—यह श्रद्धान (सम्यग्दर्शन)का लक्षण है।

विद्या-नौका चढ रागरिक्त,
उतरे तुम पार प्रभु विरक्त।९२।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *एक समयकी ज्ञानकी पर्यायको कभी तो शास्त्रमें ज्ञेयरूप कहते हैं, कभी पर्याय है इसलिये हेय है ऐसा कहा जाता है और कभी उसे प्रकट करने हेतु उपादेय कहा गया है। ऐसे एक पर्याय सम्बन्धी अनेक प्रकार शास्त्रोंमें आते हैं, तो भेदज्ञान ज्योति प्रकट करने हेतु किस बातकी मुख्यता करें? हेय–ज्ञेय–उपादेय कैसे करें? कृपया समझायें।*

समाधान :—अखंड स्वभावपर दृष्टि करनेसे जो पर्यायें प्रकट होती हैं वे आत्माका मूल स्वरूप नहीं हैं, इसलिये दृष्टि अपेक्षासे उन्हें हेय कहा जाता है। ज्ञानकी अपेक्षासे उन्हें जाननेयोग्य कहा जाता है; परन्तु जो अपूर्ण साधनाकी पर्यायें हैं वे बीचमें आये बिना नहीं रहती, वे ज्ञानमें जाननेयोग्य हैं और वे प्रकट करनेकी अपेक्षासे आदरणीय हैं। ज्ञान, दर्शनकी जो अपूर्ण पर्यायें हैं वे एक समयमें पूर्ण नहीं होती, चारित्र भी एकसाथ परिपूर्ण प्रकट नहीं होता, इसलिये उसे साधना करनी रहती है, स्वरूपमें लीनता करनी रहती है, इसलिये उन पर्यायोंको ज्ञान आदरणीय भी जानता है।

निश्चय–व्यवहारकी संधि जैसी है वैसी समझे तो साधनामें आगे बढ़ता है। दृष्टिमें एक ज्ञायकको मुख्य रखकर अपूर्ण–पूर्ण पर्यायको भी गौण किया जाता है। अपूर्ण–पूर्ण पर्याय जितना मैं नहीं हूँ, मैं तो अखंड ज्ञायक हूँ। केवलज्ञानकी पर्याय प्रकट हो तथापि वह पर्याय है। मैं तो अखंड एक द्रव्य हूँ। सम्यग्दर्शनसे लेकर जो भी निर्मल पर्यायें प्रकट होती हैं वे सब साधनाके बीचमें आती हैं, इसलिये वे प्रकट करनेकी अपेक्षा उपादेय हैं। साधना करते हुए केवलज्ञान-पर्याय प्रकट होती है, उस अपेक्षासे वह उपादेय है; परन्तु दृष्टिकी अपेक्षासे उसे हेय कहा जाता है।

प्रश्न :— *क्या प्रकट करनेकी अपेक्षासे पर्यायको उपादेय कहनेमें आता है?*

समाधान :—हाँ, पर्यायको प्रकट करनेकी अपेक्षासे उपादेय कहा है, उसमें उसे पुरुषार्थ करना रहता है। साधकको स्वानुभूतिकी दशा प्रकट हुई है, उस स्वानुभूतिमें प्रतिक्षण

यमराज जगतको शोककार,
नित जरा जन्म द्वै सखा धार;

वृद्धि हो और फिर स्वयं स्वानुभूतिरूप ही हो जाय अर्थात् जैसा आत्मा है उस रूप ही स्वयं हो जाय ऐसी दशा अभी प्रकट नहीं हुई है, इसलिये पर्याय प्रकट करनेकी अपेक्षा आदरणीय है।

मुनि छठवें–सातवें गुणस्थानमें झूलते–झूलते अंतर्मुहूर्तमें अंतरमें जाते हैं और बाहर आते हैं तथापि अभी पर्याय अपूर्ण होनेसे साधनाकी परिणति चलती ही रहती है। छठवें–सातवें गुणस्थानकी दशामें 'मैं प्रमत्त नहीं हूँ या अप्रमत्त नहीं हूँ' ऐसी दृष्टि होनेपर भी मुनि उस साधनाकी पर्यायमें झूलते हैं। उसमें वृद्धि होनेपर श्रेणि चढ़कर केवलज्ञान प्रकट करते हैं। उस साधनामें परिणतिकी डोर अपने स्वभावकी ओर है, ज्ञान ज्ञानको खींचता हुआ अपनी ओर जाता है। साधनामें ऐसा होता है तथापि दृष्टि एक आत्मापर है, दृष्टि सबको हेय करती है, दृष्टि सबको गौण करती है।

प्रश्न :— *'ज्ञान ज्ञानको खींचता हुआ' ऐसा आपने बतलाया उसका भाव क्या है? वह समझानेकी कृपा करें।*

समाधान :—ज्ञान अर्थात् पुरुषार्थका लगाव वह, जो परिणति विभावकी ओर जाती थी उसे स्वभावकी ओर खींचता है, साधनाको बढ़ाता है और भेदज्ञानकी धाराको उग्र करता जाता है।

दृष्टि प्रकट होनेके पश्चात् कुछ करना ही बाकी नहीं रहता ऐसा नहीं है। दृष्टि होनेके बाद सम्यग्दर्शन–ज्ञान प्रकट हुआ, अभी उसमें लीनता प्रकट करनी बाकी है। भेदज्ञानकी धाराको उग्र करके दृष्टिका बल बढ़ाता जाता है, अपनी परिणतिको एकदम अपनी ओर मोड़ता रहता है , विभावकी ओर जानेवाली परिणतिको स्वभावकी ओर खींचता रहता है। दृष्टिमें पर्यायको हेय मानता है, तथापि पुरुषार्थकी डोर चालु है। 'मैं तो अखंड हूँ' तथापि यह विभावकी पर्याय हो रही है, स्वभावकी पर्याय अपूर्ण है वह सब जानता है और पुरुषार्थकी डोर अपनी ओर खींचता जाता है।

*** जहाँ आत्मा का उपयोग श्रुतज्ञान में रमण करे, जिनेन्द्र कथित शब्दों को कहे और पढ़े, मनन करे, जब मुनि शास्त्रपदों के अनुसार अपने चारित्र के स्वभाव को बनावे तब ही ज्ञानदान कर रहे हैं। अर्थात् आपको आपसे शास्त्र दान देना और स्व–संवेदनज्ञान का अपने में प्रकाश करना या वीतराग चारित्रमयी स्वभाव की तरफ झुकना यही सच्चा ज्ञानदान है।** *(श्री तारणस्वामी, ममलपाहुड़, भाग–१, पृष्ठ–७६)*

बाल विभाग

मनुष्य-जन्मकी दुर्लभताके दस दृष्टांत

(मनुष्य जन्म, आर्यकुल, जैनधर्म मिलना कितना दुर्लभ है, इस सम्बन्धमें शास्त्रमें वर्णन है उस सम्बन्धित कतिपय दृष्टांत जैन आराधना कथाकोषमेंसे यहाँ दिये जा रहे हैं।)

५. रत्न-दृष्टांत

भरत, सगर, मधवा, सनत्कुमार, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, सुभौम, महापद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्ती इनके मुकुटोंमें जड़े हुए मणि, जिन्हें स्वर्गके देव ले गये हैं और वे चौदह रत्न, नौ निधि तथा सब देव, ये सब इकट्ठे नहीं हो सकते; इसी तरह खोया हुआ मनुष्य जीवन पुण्यहीन पुरुष कभी प्राप्त नहीं कर सकते। यह जानकर बुद्धिमानको उचित हैं, उनका कर्तव्य है कि वे मनुष्यजीवन प्राप्त करनेके कारण जैनधर्मको ग्रहण करें।

६. स्वप्नका दृष्टांत

उज्जैन में एक लकड़हारा रहता था। वह जंगलमें लकड़ी काटकर लाता और बाजारमें बेच दिया करता था। उसीसे उसका गुजारा चलता था। एक दिन वह लकड़ीका गड्डा सिर पर लादे आ रहा था। ऊपरसे बहुत गरमी पड़ रही थी। सो वह एक वृक्षकी छायामें सिर परका गड्डा उतार कर वहीं सो गया। ठंडी हवा बह रही थी। सो उसने एक सपना देखा कि वह सारी पृथ्वीका मालिक चक्रवर्ती हो गया। हजारों नौकर-चाकर उसके सामने हाथ जोड़े खडे हैं। जो वह आज्ञा-हुकम करता है वह सब उसी समय बजाया जाता है। वह सब कुछ हो रहा था इतनेमें उसकी स्त्रीने आकर उसे उठा दिया। बेचारेकी सब सपनेकी संपत्ति आँख खोलते ही नष्ट हो गई उसे फिर वहीं लकड़ीका गड्डा सिर पर लादकर चलना पड़ा। जिस तरह वह लकड़हारा स्वप्नमें चक्रवर्ती बन गया, पर जगने पर रहा लकड़हाराका लकड़हारा ही। उसके हाथ कुछ भी धन-दौलत न लगी। ठीक उसी तरह जिसने एक बार मनुष्य जन्म प्राप्त कर व्यर्थ गँवा दिया उस पुण्यहीन मनुष्यके लिये फिर वह मनुष्य-जन्म जागृतदशामें लकड़हारेको न मिलनेवाली संपत्तिकी तरह असंभव है।

७. चक्रका दृष्टांत

अब चक्रका दृष्टांत कहा जाता है। बाईस मजबूत खंभे हैं। एक-एक खम्भें पर एक-

तुम यमविजयी लख हो उदास,
निज कार्य करन समरथ न तास।९३।

एक चक्र लगा हुआ है, एक-एक चक्रमें हजार-हजार आरे हैं उन आरोंमें एक-एक छेद हैं। चक्र सब उलटे घूम रहे हैं। पर जो वीर पुरुष हैं वे ऐसी हालतमें भी उस खम्भों परकी राधाको वेध देते हैं। काकन्दीके राजा द्रुपदकी राजकुमारीका नाम द्रौपदी था। वह बड़ी सुन्दर थी उसके स्वयंवरमें अर्जुनने ऐसी ही राधा वेधकर द्रौपदीको ब्याहा था। सो ठीक ही है पुण्यके उदयसे प्राणियोंको सब कुछ प्राप्त हो सकता है। यह सब योग कठिन होने पर भी मिल सकता है, पर यदि प्रमादसे मनुष्यजन्म एक बार नष्ट कर दिया जाए तो उसका मिलना बेशक कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है। वह प्राप्त होता है पुण्यसे, इसलिये सदा धर्मकी प्राप्ति करनेका यत्न करना अत्यंत आवश्यक है।

८. कछुएका दृष्टांत

सबसे बड़े स्वयंभूरमण समुद्रको एक बड़े भारी चमड़ेमें छोटा छेद करके उसे ढक दिजीये। समुद्रमें घूमते हुए कछुएने कोई एक बार एक हजार वर्ष बाद उस चमड़ेके छोटेसे छेदमेंसे सूर्यको देखा। वह छेद उससे फिर छूट गया। भाग्यसे यदि फिर कभी ऐसा ही योग मिल जाए कि वह उस छिद्र पर कभी आ पहुँचे और सूर्यको देख ले, पर यदि मनुष्य-जन्म इसी तरह प्रमादसे नष्ट हो गया तो सचमुच ही उसका मिलना बहुत कठिन है।

९. युगका दृष्टांत

दो लाख योजन चौड़े पूर्वके लवणसमुद्रमें युग (धुरा)के छेदसे गिरी हुई समिलाका पश्चिम समुद्रमें बहते हुए युग (धुरा)के छेदमें समय पाकर प्रवेश कर जाना संभव है, पर प्रमाद या विषयभोगों द्वारा गँवाया हुआ मनुष्यजीवन पुण्यहीन पुरुषोंके लिए फिर सहसा मिलना असंभव है। इसलिये जिन्हें दुःखोंसे छूटकर मोक्ष सुख प्राप्त करना है उन्हें तब तक ऐसे पुण्यकर्म करते रहना चाहिये कि जिनसे मोक्ष होने तक बराबर मनुष्यजीवन मिलता रहे।

१०. परमाणुका दृष्टांत

चार हाथ लम्बे चक्रवर्तीके दंडरत्नके परमाणु बिखरकर दूसरी अवस्थाको प्राप्त कर लें और फिर वे ही परमाणु दैवयोगसे फिर कभी दण्डरत्नके रूपमें आ जाएँ तो असम्भव नहीं, पर मनुष्यपर्याय यदि एक बार दुष्कर्मों द्वारा व्यर्थ खो दिया तो इसका फिर उन अभागे जीवोंको प्राप्त हो जाना जरूर असम्भव है। इसलिये पंडितोंको मनुष्यपर्यायकी प्राप्तिके लिये पुण्यकर्म करना कर्तव्य है। इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ मनुष्य जीवनको अत्यन्त दुर्लभ समझकर बुद्धिमानोंको उचित है कि वे मोक्षसुखके लिए संसारके जीवमात्रके हित करनेवाले पवित्र जैनधर्मको ग्रहण करे।

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

जोडी बनाये।

(१) आचार्य उमास्वामी	(१) नाटक समयसार
(२) आचार्य कुन्दकुन्ददेव	(२) भगवती आराधना
(३) आचार्य जिनसेन	(३) छ ढाला
(४) आचार्य पूज्यपादस्वामी	(४) योगसार
(५) आचार्य समन्तभद्र	(५) धवला
(६) आचार्य अकलंकदेव	(६) भक्तामरस्तोत्र
(७) आचार्य रविषेण	(७) तत्त्वार्थसूत्र
(८) कविवर धनंजय	(८) कल्याणमंदिर स्तोत्र
(९) पंडित दौलतराम	(९) सम्यग्ज्ञान दीपिका
(१०) पंडित राजमल्लजी	(१०) अष्टपाहुड
(११) पंडित बनारसीदासजी	(११) विषापहार स्तोत्र
(१२) आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी	(१२) समयसार कलशटीका
(१३) आचार्य योगीन्दुदेव	(१३) तत्त्वार्थवार्तिक
(१४) पंडित दीपचंदजी	(१४) हरिवंशपुराण
(१५) आचार्य पुष्पदंत–भूतबलिजी	(१५) मोक्षमार्गप्रकाशक
(१६) आचार्य अमितगति	(१६) रत्नकरंड श्रावकाचार
(१७) आचार्य मानतुंगजी	(१७) पद्मपुराण
(१८) धर्मदास क्षुल्लक	(१८) समाधितंत्र
(१९) कुमुदचंद्र आचार्य	(१९) चिद्विलास
(२०) शिवकोटी आचार्य	(२०) सामायिक पाठ

छोटे बच्चोंके लिए प्रश्नोत्तर

(रिक्त स्थानकी पूर्ति किजीये।)

(1) पूज्य गुरुदेवश्रीको उनके सगे-सम्बन्धि .... कहकर बुलाते थे।

(2) पूज्य गुरुदेवश्रीने समयसार पर सभामें .... बार प्रवचन दिये थे।

(3) पूज्य गुरुदेवश्रीने .... भगवानके फोटोके समक्ष परिवर्तन किया था।

(4) पूज्य गुरुदेवश्रीके संप्रदायके गुरुका नाम .... महाराज था।

(5) नंदीश्वर द्वीपकी एक दिशामें .... जिनालय होते हैं।

(6) पूज्य बहिनश्रीको सम्यक्‌दर्शन .... कृष्णा ....के रोज हुआ था।

(7) 24 तीर्थंकरोंमेंसे ''म''से शुरू होते (1) .... (2) .... (3) .... भगवान हैं।

(8) जीवोंकी संख्या स्वर्गमें ज्यादा कि मोक्षमें ? ....

(9) पंचपरमेष्ठीमेंसे पूर्ण ज्ञानी (सुखी) (1) .... (2) .... हैं।

(10) बाहुबली भगवानकी बहिन बालब्रह्मचारिणी (1) .... (2) .... थीं।

(11) तीर्थंकर भगवानको भवनवासी देवोंके कितने इन्द्र नमन करते हैं? ....

(12) निशंकगुणमें .... प्रसिद्ध हुए।

(13) एक पुद्‌गल परमाणु आकाशकी जितनी जगह रोके उसको .... कहते है।

(14) यह वैशाख शुक्ला-2के दिन पूज्य गुरुदेवश्रीका ......वाँ जन्मोत्सव मनाया गया।

(15) जिस शक्तिके कारणसे द्रव्यमें प्रयोजनभूत क्रिया हो उसे .... गुण कहते हैं।

(16) रावणकी पत्नीका नाम .... था।

(17) पार्श्वनाथ भगवानके समवसरणमें .... गणधर थे, उसमें मुख्य .... थे।

(18) रावणकी मृत्यु ....के हाथ हुई थी।

(19) भावस्वरूप गुणको .... गुण कहते हैं।

(20) महावीर भगवानका जन्म .... नगरमें हुआ था।

प्रौढके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

१—७	६—१३	११—१	१६—२०
२—१०	७—१७	१२—१५	१७—६
३—१४	८—११	१३—४	१८—९
४—१८	९—३	१४—१९	१९—८
५—१६	१०—१२	१५—५	२०—२

बालकोंके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

१) भगत	(८) मोक्षमें	(१५) वस्तुत्व
(२) १९	(९) अरिहंत सिद्ध	(१६) मंदोदरी
(३) पार्श्वनाथ	(१०) ब्राह्मी - सुंदरी	(१७) १०, श्री स्वयंभू
(४) हीराचंदजी	(११) ४०	(१८) लक्ष्मण
(५) १३	(१२) अंजनचोर	(१९) अनुजीवी
(६) फाल्गुन - १०	(१३) प्रदेश	(२०) कुंडलपुर
(७) मल्लीनाथ, मुनिसुव्रत महावीर	(१४) १३६	

(पृष्ठ १४ का शेष भाग) (मुक्तिका मार्ग)

यह तो सच ही कहा है कि शुभरागसे धर्म नहीं होता, किंतु यह कहाँ कहा है कि शुभरागको छोड़कर अशुभराग करो ? जिसे निमित्तकी परीक्षाका भान नहीं है वह अपने उपादानस्वरूपको कैसे पहचानेगा ? भगवान अरहन्तदेव, गुरु और सत्‌शास्त्र सत्‌ स्वरूपके समझनेमें निमित्त हैं। भगवान अरहन्तदेवका सच्चा भक्त तन, मन, धनसे सद्‌भावरूप भक्ति इत्यादिमें प्रवृत्ति करता है, अपनी शक्ति न हो और यदि कोई दूसरा साधर्मी बन्धु देव, गुरु, धर्मकी प्रभावनादि सत्कर्मोंमें प्रवृत्ति करता है तो वह इसकी कोई ईर्ष्या नहीं करता, किन्तु उल्लसित होकर कहता है कि जो मैं चाहता हूँ वह देव-गुरुकी भक्तिका कार्य मेरे बदलेमें मेरा साधर्मी भाई करता है—वह धन्य है। इस प्रकार वह स्वयं अनुमोदना करता है किंतु दूसरेकी ईर्षा नहीं करता। यदि वह ईर्षा करता है तो समझना चाहिए कि उसकी देव-गुरुके प्रति सच्ची भक्ति नहीं है, उसके भीतर गृहीत मिथ्यात्वकी शल्य मौजूद है। (क्रमशः) ✻

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-०० से ६-२० : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप

सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१८वीं बारका) सीडी प्रवचन

दोपहर : ३-०० से ४-०० : श्री नियमसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन

दोपहर : ४-०० से ४-३० : श्री जिनेन्द्र भक्ति

रात्रि : ८-०० से ९-०० : श्री परमात्मप्रकाश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

❀ **नन्दीश्वर-अष्टाह्निका** ❀ आषाढ़ शुक्ल ८, गुरुवार, ता. ३-०७-२०२५, से आषाढ़ शुक्ल १५, गुरुवार, ता. १०-०७-२०२५—तक 'पंचमेरु-नन्दीश्वर पूजनविधान' एवं अध्यात्मतत्त्व ज्ञानोपासनापूर्वक आनन्दोल्लास सह मनाया जाएगा।

वीरशासन जयंती : अषाढ कृष्ण-१, शुक्रवार ता. ११-०७-२०२५ के दिन श्री वीरशासन-जयंती विशेष पूजा तथा भक्ति सह मनाया जायेगा।

दृष्टांत - सिद्धान्त

दृष्टांत : जीवने बहुत चतुराईसे व्यापार किया अतः उसके पास काफी धन हो गया। यदि वह बराबर व्यापारमें ध्यान नहीं देता तो मुँहकी खानी पड़ती। अतः हमे व्यापारमें बहुत चतुराई व पूरी सावधानी रखनी चाहिए।

यह जीवोंका बहुत बड़ा भ्रम है। जीव तो व्यापार नहीं कर सकता है, मात्र धनकी ममता वश चतुराई व ध्यानादिके विकल्प करता है। अतः उसके पास तो मात्र व्यापारकी ममता ही आती है।

सिद्धान्त : इसी भांति पुण्य-पाप आदिको जीवका जो कर्तव्य मानता है वह मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टिको तो वर्तमानदशाके प्रमाणमें पुण्य-पाप होते हैं, फिर भी वह ज्ञाता-दृष्टा रहता है। वह जितने अंशमें स्व-सन्मुखतारूप ज्ञाता-दृष्टा रहे वह संवर है। जब तक वीतरागदशा न हो तब तक उन्हें भी राग होता है किन्तु वे उनके ज्ञाता रहता है।

अतः 'व्यापारादि अजीवका मैं ज्ञाता हूँ' इस भांति ज्ञाता-दृष्टाकी प्रतीति वह सम्यग्दर्शन है। इसके अलावा-अलावा स्वयंको 'जो व्यापारादि अजीव का ज्ञाता-दृष्टा न स्वीकारता—नहीं प्रतीतरूप करता है, परन्तु उनका स्वयंको कर्ता स्वीकारता-प्रतीत करता है वही मिथ्यादृष्टि है। अतः हमे चाहिए कि हम स्वयंको ज्ञाता-दृष्टारूप जाने व दृढ़ प्रतीत करें।

बृहद् मुम्बई दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल (मुंबई)की ओरसे

अध्यात्म-अतिशयतीर्थ सोनगढ़में सानन्दोल्लास सम्पन्न होनेवाला
प्रशममूर्ति भगवती धन्यावतार

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनका

११२ वाँ जन्म-महोत्सव

स्वानुभवमुद्रित-अध्यात्ममार्गप्रकाशक परमोपकारी पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके परम भक्त स्वानुभूतिविभूषित भगवती पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन–जिनकी वीतराग देव-शास्त्र-गुरुमहिमाभीनी एवं स्वानुभूतिमार्गप्रकाशिनी उपकार-किरणें हमारे साधनापथको सदैव आलोकित करती हैं। उनके प्रति उपकृतताभीगी भावनाको विशेष दृढ़ करनेके लिये, उनकी—११२वीं वार्षिक जन्मजयन्ती (भादों वदि दोज) सुवर्णपुरीमें श्री बृहद् मुम्बई दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल मुंबईकी ओरसे अत्यन्त भक्तिभाव सह मनाई जायेगी। यह वार्षिक मंगल जन्मोत्सव श्रावण शुक्ल १३, ता. ७-८-२०२५, गुरुवारसे भाद्रपद कृष्ण-२ ता. ११-८-२०२५, सोमवार—पाँच दिन तक 'श्री सुवर्णपुरी तीर्थ पूजन-विधान', अध्यात्म-ज्ञानोपासना और देव-गुरुभक्ति आदि विविध रोचक कार्यक्रम सह अतीव भक्त्युल्लाससे मनाया जायेगा। इस मंगल अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्रीके अध्यात्मरसपूर्ण टेपप्रवचन, पूज्य बहिनश्रीकी अनुभवरसभीनी विडियो-धर्मचर्चा, सांस्कृतिक-कार्यक्रम, विविध भजनमंडली द्वारा जिनेन्द्र एवं प्रासंगिक भक्ति—इत्यादि अनेकविध कार्यक्रमका भी सबको लाभ मिलेगा। समागत मेहमानोंके लिये आवास-भोजनव्यवस्था निःशुल्क रखी गई है।

निमंत्रक

श्री बृहद् मुम्बई दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल मुंबईके

जय जिनेन्द्र

नोंध : निमंत्रण-पत्रिकाकी लेखन एवं प्रेषण विधि सोनगढ़में ता. ६-७-२०२४, रविवारके दिन रखी गई है।

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्गार

• कितने ही जीव कहते हैं कि इस कालमें स्वरूपानुभव कठिन है —ऐसा कहनेवालोंको राग-द्वेष सरल लगते हैं अर्थात् बहिरात्मत्व सरल लगता है। जिन्हें पुण्य-पापके परिणाम करके रूलना अच्छा लगता है वे बहिरात्माको साधते हैं, उन्हें बाह्य-रुचि है, अंतरका प्रेम नहीं। इस प्रकार स्वरूप (अनुभव) को कठिन माननेवाले स्वरूपका अनादर ही करते हैं।६९६।

• सर्वज्ञ परमात्मा द्वारा कथित पदार्थके स्वरूपके अनुसार आचार्य-रचित शास्त्रका सम्यक् रूपसे अवगाहन करना, सांगोपांग समझना ही साधकता है। जैसे गहरे दरिया (समुद्र)में अवगाहन करनेसे मोती मिलते हैं, वैसे ही शास्त्र-विषयमें सम्यक् प्रकार प्रवेश करे, अवलोकन करे तो भावश्रुत प्रकट होता है।६९८।

• यदि आत्मा निर्विकल्प होकर स्वयंको ग्रहण न करे तो उसने शास्त्र-आशयको समझा ही नहीं। आगमबोध तो ऐसा है कि तेरा आत्मा ज्ञानज्योति है। इस प्रकार द्रव्यश्रुतका अवगाहनमें भावश्रुतका फल है।६९९।

• प्रश्न :—रागादि जीवके भाव हैं तथा स्पर्शादि परभाव हैं, तो रागदिको पर-भाव कैसे कहते हैं ?

उत्तर :—शुद्धनिश्चयसे रागादि जीवके भाव नहीं हैं, क्योंकि त्रिकाली शुद्धस्वभावमें तादात्म्यरूप-दृष्टिसे विकारका अभाव है। पुनः वे रागादि आत्माके गुणोंमें तन्मय नहीं है। स्वभावमें, संसार तन्मय नहीं है; यदि तन्मय हो तो मोक्ष ही नहीं हो सकता। संसार तो एक समय मात्रकी पर्याय है। उत्पाद-व्ययरूप प्रत्येक समय नवीन पर्याय होती है, अन्य-अन्य भाव रूप है। रागादि-विकारभाव तो जीवकी वर्तमान पर्याय है, उस पर्याय से भिन्न नहीं है। परन्तु वह विकारीपर्याय, त्रिकाली-स्वभावसे तन्मय नहीं है, अतः भिन्न है; इसीलिए परभाव कहलाती है। ७००।

• स्वरूपके भानपूर्वक प्रतिमामें भगवानकी यथार्थ स्थापनाको ज्ञानी जानता है। देखो! अर्हन्तदेवकी वीतरागी-मुद्रा! वह पत्थरमेंसे धड़ी होने पर भी वीतराग-मार्गको दिखलाती है। पर किसको ? — कि जिसे अनतरमें भान हुआ है उसे; अहो! शान्त-शान्त...वीतरागमुद्रा।७०२।

आत्मधर्म
जुलाई २०२५
अंक-११, वर्ष १९

Posted at Songadh PO
Publish on 5-7-2025
Posted on 5-7-2025

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org